समता के स्वर-४

अपने को समझें

(तृतीय पुष्प)

सम्पादक

शान्ति चन्द्र मेहता

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, बीकानेर (राज.)


प्रथम संस्करण : २१०० प्रतियां, १९९८ ई., वि.सं. २०५५, वीर सं. २५२५

सम्पादक :

शान्ति चन्द्र मेहता

'महत्ता सदन' ए-४ कुंभानगर, चित्तौड़गढ (राज.)

प्रकाशक:

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर-३३४००५


अर्थ सहयोगी:

१.मूलचन्द, प्रकाशचन्द, सुन्दरलाल सुराणा, नोखा

२. सोहनलाल बैद, नोखा


मूल्य : २२/-

रियायती मूल्य : १२/-


मुद्रक :

अमित कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिन्टर्स

सिटी डिस्पेंसरी के पास, भुजिया बाजार, बीकानेर

प्रकाशकीय

'अपने को समझे' का तृतीय पुष्प साधको, स्वाध्यायियो एव आत्मलक्षी पाठको के हाथो मे प्रस्तुत करते हुए असीम प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। इसमे हुक्मेश सघ के अष्टम पट्टधर समता विभूति, अध्यात्म योगी, समीक्षण ध्यान प्रणेता आचार्य श्री नानेश के नोखा वर्षावास (वि स 2033) मे प्रदत्त पन्द्रह प्रवचन सग्रहीत है, जो स्व-दर्शन की दृष्ठि जाग्रत कर आत्म निरीक्षण व आत्म-समीक्षण की भावना को सचरित करने मे समर्थ व सक्षम है। जीवन रूपान्तरण करने वाले इन प्रवचनो मे आचार्य प्रवर का चिन्तन–गाभीर्य, तलस्पर्शी दार्शनिक अध्ययन एव मनोवैज्ञानिक विश्लेषण स्पष्टत परिलक्षित है। आपने व्यक्तित्व निर्माण हेतु चिन्तन को नव आयाम दिया है, वह है विचारो की निर्मलता, भाव विशुद्धि व परिष्करण के क्रमिक विकास द्वारा आत्म-निरीक्षण की ओर बढना। यही है वीतरागता, आत्म-रमण ओर चेतना का जागरण। अन्य शब्दो मे यही है अध्यात्म की साधना और मुक्ति की आराधना।

जैसा कि सुज्ञात है– व्यावहारिक जीवन मे हम किसी व्यक्ति के साथ वर्षो तक रह लेते है– जी लेते है फिर भी उसे पहचान नही पाते। यही स्थिति स्वय अपने साथ है, हम बाह्य जगत से जुडे रहते है पर अन्तर्जगत् की चेतना से दूर होते जाते है। इसी को दृष्टिगत रखकर आचार्य देव ने अध्यात्म के प्रति जागरूक रहने का सन्देश इन प्रवचनो के माध्यम से दिया है। आवश्यकता है कि हम बाह्य

स्थूल शरीर, मन और बुद्धि से ऊपर उठकर अतीन्द्रिय चेतना को विकसित करने हेतु आलस्य, प्रमाद और मूर्च्छा के वलय को तोडकर आन्तरिक सीमा मे प्रवेश करे और अपने को समझे।

इस भाग मे सकलित प्रवचन है –

चार मे एक और एक मे चार दुर्लभ, सत समागम का सत्प्रभाव, मद मे घेर्‌यो रे अध केम करे ? आपत्तियो के सामने अटल आस्था, आज्ञा के प्रति अर्पणा के भाव, आत्मा बाहर से अन्दर–अन्दर से परम, अपने ही घर के खजाने की खोज, अन्तर्मुखी वृत्ति और निर्लिप्तता, आत्म लक्ष्मी की ऋद्धि आत्म दीप की दीप्ति। स्पष्ट ही इन प्रवचनो का सार है कि 'दुल्लहा माणुस भवे' अर्थात् दुर्लभ मनुष्यभव मे हम अहभाव, मदान्धता व कुतर्क को त्याग कर सरल, समर्पित व आस्थावान रहकर सम्यगदर्शन/सुतर्क से साक्षात्कार करे। सत समागम से स्वय के दोष दर्शन की दृष्टि प्राप्त करे, आत्मानन्द की अनुभूति हेतु अन्तर्मुखी बने और प्रतिसलीनता के माध्यम से आत्म दीप को प्रज्वलित करे। दृष्टि बदलते ही सृष्टि बदल जाती है अत स्वय को समझे, जाने और पहचाने। तभी हम वास्तविक सुख प्राप्त करने मे समर्थ हो सकेगे।

सकलित प्रवचनो मे गुफित आचार्य श्री जी के भावो को यथावत रखते हुए सम्पादकीय स्पर्श द्वारा मार्मिक, बोधगम्य व सरल/सरस रूप मे प्रस्तुति दी है श्रीमान शान्तिचन्द्र जी मेहता ने, जो हार्दिक आभार के अधिकारी है। साथ ही श्री उदय नागोरी द्वारा इसके प्रूफ सशोधन मे प्रदत्त सहयोग हेतु भी आभार।

नोखा के सुराणा परिवार के धर्मनिष्ठ सदस्यो एव सघनिष्ठ श्री सोहनलाल जी बैद के अर्थ सौजन्य से इस कृति का प्रकाशन किया गया है, अत वे साधुवाद के पात्र है।

विश्वास है कि इन प्रवचनो मे निहित आत्म चेतना के मूल स्वर और जीवन मूल्यो को आत्मसात कर श्रद्धालुजन, साधक वर्ग व स्वाध्यायी बन्धु आत्म दर्शन, आत्म-साक्षात्कार व अन्तरावलोकन के मार्ग मे अग्रसर होगे व भावशुद्धि कर चेतना का ऊर्ध्वारोहण करने की दिशा मे पथारूढ होगे।

भवदीय

गुमानमल चोरडिया	**सागरमल चपलोत**	**इन्द्रचन्द बैद**
अध्यक्ष/ सयोजक	महामन्त्री	सह–सयोजक

भंवरलाल कोठारी **चम्पालाल डागा**

उपाध्यक्ष

सरदारमल काकरिया	केशरीचन्द सेठिया	मोहनलाल मूथा
नेमीचन्द तातेड	कमल सिपानी	सायरचन्द छल्लानी

डॉ सजीव भानावत

(सदस्यगण, साहित्य समिति, श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन सघ)

अर्थ सहयोगी परिचय

प्रस्तुत कृति 'अपने को समझे' तृतीय पुष्प दो सघनिष्ठ परिवारो के अर्थ सौजन्य से प्रकाशित हुई है। प्रथम है सुराणा परिवार के तीन सदस्य, जिन्होने अपने पितृश्री दृढधर्मी श्रद्धानिष्ठ सुश्रावक स्व श्री दीपचन्द जी सुराणा की स्मृति मे अर्थ सहयोग प्रदान किया है। ये है– सर्व श्री मूलचन्द जी, प्रकाशचद जी एव सुन्दरलाल जी।

आपका जन्म नोखागाव मे हुआ। आपने कुशलता तथा न्याय-नीति युक्त जीवन यापन करते हुये अल्पकाल मे लक्ष्मी ही अर्जित नही की अपितु उसका उन्मुक्त हृदय से सदुपयोग भी किया। आपका जीवन त्याग-तपमय था। आप प्रतिदिन एक बार ही भोजन करते थे।

नोखागाव (बीकानेर) मे लाईट, कुए की व्यवस्था एव धर्मोपासना हेतु 'श्रीगणेश भवन' का निर्माण आपके सद्प्रयासो का ही मूर्तरूप है। आप नोखागाव के प्रमुख श्रावक थे तथा सन्त सतियाजी की समर्पित भावना से सेवा करते थे।

अपकी धर्मपत्नी श्रीमती लालीदेवी धर्मनिष्ठ सुश्राविका है, जिनके वर्षो से आजीवन चौविहार, हरी का त्याग (2 का आगार) है। प्रतिदिन सामायिक एव अन्य स्फुट त्याग-प्रत्याख्यान आदि चलते रहते है और सरलता एव सादगी जिनके जीवन का अग है।

आपके चार पुत्रो मे द्वितीय पुत्र श्री इन्द्रचद जी का 39 वर्ष की आयु मे स्वर्गवास होना पूरे परिवार के लिए वज्रपात था। वर्तमान मे तीनो पुत्रो सहित पूरा परिवार आचार्य भगवन् एव युवाचार्य श्री रामलालजी म सा के प्रति पूर्ण समर्पित है। गुरुनिष्ठा आपका व्रत है।

इस कृति मे आचार्य देव द्वारा नोखा वर्षावास (स 2033) मे प्रदत्त 15 प्रवचन सकलत है। पूर्ण विश्वास है कि ये अनमोल प्रवचन आपके आत्मोत्थान मे सहायक होगे। मानव अपने को समझे और स्वय से जुडे यही इस ग्रथ का केन्द्रीय सदेश है। आचार्य भगवन् के सूत्र रूप शब्दो को जीवन मे उतार कर भव्य प्राणी अपना कल्याण करे यही शुभ कामना है।

अर्थ सहभागी सुराणा बन्धुओ, जिनका पता निम्नाकित है, के प्रति आभार–

जैन सुपारी सेन्टर

किराणा ओली मस्कासाथ,

इतवारी, नागपुर–440002

फोन 761865, 767466

इन्ही के साथ अर्थ सहयोग मे उदारमना श्री सोहनलालजी बैद, नोखा मण्डी ने सहभागिता प्रदान की है।

श्री हजारीमल जी बैद एव श्रीमती हुलासी बाई के आत्मज श्री सोहनलाल जी बैद धर्मनिष्ठ सुश्रावक है। आपका जन्म वि स 1986 आषाढ सुदी 8 को नोखामण्डी (बीकानेर) के पार्श्ववर्ती गाव 'कक्कू' मे हुआ। कालान्तर मे आप नोखामण्डी आकर बस गये। श्री बैद के अग्रज श्री मोहनलाल जी एव अनुज सुगनचन्द जी भी धर्मपरायण श्रावक है।

आप बचपन से ही प्रतिदिन सामायिक करते है एव आचार्य श्री नानेश के नोखामण्डी चातुर्मास मे प्रतिदिन पॉच सामायिक, आजीवन चौविहार एव शीलव्रत के नियम ग्रहण कर लिये। वर्षो से पॉचो तिथि हरी त्याग के अतिरिक्त अनेक त्याग-प्रत्याख्यान के धारक श्री बैद जी ने मात्र 50 वर्ष की आयु मे व्यापार से निवृत्ति ले ली, जो धन के पीछे समग्र जीवन को होम देने वाले लोगो के लिए एक अनुपम व प्रेरणास्पद उदाहरण है। उदारता आपके जीवन का सहज गुण है।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सुरजादेवी भी धर्मपरायण आदर्श श्रमणोपासिका है। आप दोनो के सद्सस्कार आपके सुपुत्रद्वय श्री शातिलाल जी, राजेन्द्रप्रसाद जी तथा पुत्रियो– श्रीमती पुष्पा, मॅजू, सरोज एव सुशीला मे भी स्पष्टत देखे जा सकते है। श्री राजेन्द्रप्रसाद जी सामाजिक, धार्मिक गतिविधियो मे प्रमुखता से भाग लेते है।

आपका पूरा परिवार आचार्य श्री एव युवाचार्य श्री के प्रति पूर्ण समर्पित एव निष्ठावान है।

प्रस्तुत पुस्तक मे अर्थ सहभागिता प्रदान कर श्री बैद ने आचार्य श्री नानेश की अमृत-वाणी को जन-जन तक पहुॅचाने मे अमूल्य सहयोग दिया है। अत हम उनके आभारी है।

आपके निवास स्थान का पता है–

"नानेश छाया"

सघ बिल्डिंग के पास, बडकस चौक,

महाल, नागपुर–440002

फोन 720544,720771,724148

–धर्मचन्द पारख

अनुक्रमणिका

1

चार में एक और एक में चार दुर्लभ

समव देव ते धुर सेवो सवे रे
चरमावर्त हो चरण करण तथा रे
भव परिणति परिपाक।
दोष टले वरि दृष्टि खुले भली रे
प्राप्ति प्रवचन वाक् ।।

एक भव्य आत्मा को सभवनाथ के चरणो मे असभव को भी सभव बनाने की भावना लेकर पहुँचना है। वह भव्य आत्मा, जिसको इस जन्म मे मानव जीवन मिला है, उसको अपनी इस उपलब्धि पर विचार करना है तथा इस लक्ष्य पर गभीरतापूर्वक विचार करना है कि वह इस विशिष्ट उपलब्धि का विशिष्ट उपयोग कैसे कर पायगी ?

मनुष्य जीवन ससार के सभी जीवनो मे सर्वश्रेष्ठ जीवन है और यही एक मात्र ऐसा जीवन है जिसमे यदि ज्ञान, श्रद्धा, सयम और पुरुषार्थ का सम्यक् सयोग बिठा ले तो वह मनुष्य अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इसी दृष्टि से चारो गतियो मे एक मनुष्य गति और एक मनुष्य गति मे ज्ञान, श्रद्धा आदि चारो बातो का सयोग परम दुर्लभ बताया गया है । चार मे एक और एक मे चार– ये दुर्लभ है तथा दुर्लभ को सुलभ बना लेना– यही सभवनाथ भगवान् की प्रार्थना का सु–परिणाम होगा । उनकी प्रार्थना शक्ति की इसी विशिष्टता पर भव्यजन भावनाशील बनता है कि वह उस शक्ति को लेकर असभव को भी सभव बना लेगा। मानव जीवन मिल गया है फिर दुर्लभ को सुलभ बनाने मे शक्ति का नियोजन क्यो न हो ?

मुख्य चार योनियो में मानव योनि की दुर्लभता

नरक, तिर्यच योनियो से मानव योनि श्रेष्ठतर है– यह तो सभी सहज मे समझ जाते है लेकिन किसी को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि देव योनि से भी यह मानव योनि श्रेष्ठतर है। इसका कारण है कि सासारिकता मे रचे पचे मनुष्यो को भौतिक ऋद्धि सिद्धि ही मुख्य दिखाई देती है और उस दृष्टि से देवो को श्रेष्ठतम भौतिक ऋद्धि सिद्धि उपलब्ध होती है जिसकी मानव केवल कल्पना ही कर सकता है। यह दृष्टि दोष है। भौतिकता स्थूल साधन है जबकि आध्यात्मिक वह सूक्ष्म साधना है जिसके द्वारा आत्मा अपने सम्पूर्ण बन्धनो से मुक्त होकर मोक्ष की प्राप्ति कर सकती है। यह सूक्ष्म साधना देवो को उपलब्ध नही है। वहॉ भोग है, त्याग नही है जबकि त्याग की सीढी पर सबसे ऊपर पहुॅचकर ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है और त्याग की उच्चतम प्रगति मानव जीवन मे ही संभव होती है।

देव योनि मे रहने वाले देव आपको भौतिक सम्पन्नता से अधिक सुखी दिखाई दे सकते है– सामान्य मनुष्यो की अपेक्षा कुछ ज्ञान की शक्ति भी उनमे अधिक होती है, लेकिन सिर्फ ज्ञान और भौतिक सम्पन्नता से ही जीवन को सुखमय नही बना सकते है। ये दोनो प्राप्तियॉ जीवन को अव्रत मे डालने वाली होती है– गतियो के आवर्त मे घुमाने वाली होती हैं। आवर्त को भवर भी कहते है। ससार के प्रवाह मे स्थान-स्थान पर भवर चलते रहते है जिनमे जीवन जब फंसता है तो पता नही चलता कि उस भवर के चक्र मे पडकर जीवन की क्या गति विगति बन जाती है ? कारण, भवर मे फसकर उसमे से निकलना बडा ही कठिन हो जाता है। भवर मे गिरा हुआ फिर भवर मे ही चक्कर काटता रहता है। इसी तरह ससार के भवरो मे अनन्त छोटे बडे प्राणी चक्कर काट रहे है– कई बार निकलने की इच्छा करते हुए भी पुरुषार्थहीन बने रहकर उससे बाहर नही निकल पा रहे है। विरली ही आत्माऍ अपने पुरुषार्थ का सत्प्रयोग करती हैं और उस भवर मे से बाहर निकलती है। भवर से बाहर निकलने के लिये पुरुषार्थ के सशक्त प्रयोग का सर्वश्रेष्ठ जीवन यही मानव जीवन होता है। इसी गुण के कारण ही सभी जीवनो मे इस जीवन की श्रेष्ठता है तो इसी कारण मानव जीवन को दुर्लभ भी बताया गया है ।

आत्म शक्तियो के विकास का आदर्श क्षेत्र– मानव जीवन

यह आत्मा इस ससार रूपी भवर मे अनादिकाल से चक्कर काट रही है कि उसको उसमे से निकालना ही दुष्वार हो रहा है। उसको इस भवर मे से निकालने का कोई साधन है तो यह मनुष्य तन ही है। देवो मे भी यह क्षमता नही है। देव तो भौतिक सुखो का अनुभव करते हुए इस भवर मे गहरे ही फसते है। लेकिन मानव यदि अपनी आत्म-शक्तियो का विकास करे और अपने जीवन को सही दिशा मे लेकर चलने का प्रयास करे तो वह इस भवर से निकल सकता है। इसीलिये प्रभु महावीर का उद्‌बोधन है कि–

चत्तारि परमगाणि, दुल्लहाणि जन्तुणो।
माणुसुत्त सुईसद्धा, सजम्मिय वीरिय।।

ससार की कुल चार योनियो– नरक, तिर्यच, मनुष्य एव देव मे मनुष्य योनि दुर्लभ है तो यह मनुष्य जीवन मिल जाने के बाद भी चार अगो की प्राप्ति दुर्लभ मानी गई है, क्योकि ये चार अग याने कि चार साधन प्राप्त हो तो फिर भवर मे से निकलना कठिन नही रहे।

इसलिये सबसे पहले यह सकेत दिया है कि मनुष्य तन की उपलब्धि बडी कठिनाई से होती है। बहुत पुण्य का सचय होता है तब यह जीवन मिलता है। इससे शास्त्रकारो का तात्पर्य यह है कि अन्य प्राणियो की अपेक्षा मनुष्य जीवन अतिशय पुण्यवानी से प्राप्त होता है। किन्तु आज के मानव की बढती हुई जनसख्या को देखकर बुद्धिवादी वर्ग के मस्तिष्क मे एक प्रश्न खडा होता है कि शास्त्रकार मनुष्य जन्म को अतिशय पुण्यवानी का फल मानते है, पर इस बेहद बढती हुई जनसख्या को देखे तो ऐसा लगता है कि मनुष्य तो बहुत साधारण तौर पर पैदा हो रहा है। जहाँ भारत की जनसख्या 33 करोड के बाद 40 करोड हुई और 50 करोड हो गई । फिर पाकिस्तान के रूप मे देश का विभाजन हुआ, उसके उपरान्त भी अब फिर भारत की जनसख्या 60 करोड तक पहुँच गई है। इसका कुछ आधार तो होना चाहिये कि इतनी जनसख्या कैसे बढी ? क्या इतनी पुण्यवानी अर्जित करके एक-एक मनुष्य का जन्म हो रहा है ? जबकि दूसरी तरफ मनुष्य के व्यवहार को देखते है तो उससे शका होती है कि वह पुन मनुष्य तन को पायगा या नही ?

आज के मनुष्य की कितनी घिनौनी प्रवृत्ति है किस प्रकार का उसका निकृष्ट जीवन है, कैसे मलिन विचार वह रखता है– एक दूसरे को धोखा देने

की बात करता है तथा किस प्रकार वह लडने भिडने की कटुप्रवृत्तियो, राग द्वेष की ज्वालाओ तथा विषमता की दवाइयो मे उलझा हुआ है ? मानव जीवन की आज की विचित्र दशा दृष्टिगत हो रही है--इसको देखकर इसकी अतिशय पुण्यवानी की पृष्ठभूमि को पहिचान पाना अत्यन्त कठिन हो रहा है। यह मानव वैसा ही कर रहा है जैसा कि पशु करता है। मानव वृत्ति उन्नत बने वह तो नही हो रहा है, बल्कि उसमे पशु वृत्ति भडक रही है– ऐसा क्यो है ? यह सब क्यो हो रहा है, कौन कर रहा है ? क्या मानव ही अपने जीवन वृक्ष की शाखाओ- उप शाखाओ को अपनी ही अज्ञान की कुल्हाडी से स्वय ही नही काट रहा है ?

वर्तमान मानव जीवन की पतनावस्था दयनीय है !

जितना कुछ आज का मानव अपने आप को सभ्य सस्कारो मे बढा-चढा मानता है, भौतिक विज्ञान के सम्बन्ध मे अत्यधिक उच्च स्तर की बात करता है, उतना ही उसका आन्तरिक जीवन ठीक इसके विपरीत ज्ञात होता है। लोग कहते है कि वर्तमान युग मे मानव ने कितनी ऊँची विकास की श्रेणी प्राप्त करली है कि वह आदिम मानव के मुकाबले मे कितना अधिक विकसित हो गया है ? कहॉ अणु शक्ति की उपलब्धियो को प्राप्त कर लेने वाला आज का मानव और कहॉ आदि युग का मानव, जो पत्थर से बने शस्त्रो से अपना काम चलाता था ? फिर आदिम मानव पशु पालन की ओर मुडा, खेती करने लगा और व्यापार शुरू हुआ । तब ग्राम नगर बसने लगे और राजा महाराजाओ का समय आया। फिर उद्योग फैले, विज्ञान पनपा तथा नये-नये आविष्कारो का जमाना आया। आज के मानव ने तो विज्ञान के वे वे आविष्कार किये हैं– वे वे घातक शस्त्र खोजे है कि सारी दुनिया मे एक साथ महाविनाश मचाया जा सकता है। कहॉ तो जमीन पर रहते हुए पत्थर फैकने का प्रसग और कहॉ आकाश मे उडते हुए अणुबम गिराने का प्रसग ? यह मानव का विकास है या पतन– उसकी मनुष्यता बढी है या घटी है– यह देखने और समझने का विषय है।

यह और विचित्र बात है कि मानव ने जैसा भी किया इतना विकास कर लिया, लेकिन पशु ने कोई विकास नही किया। पशु तो जैसा आदि युग से चल रहा था, वैसा आज भी चल रहा है। न तो उसने शारीरिक दृष्टि से कोई विकास किया, न ही मानसिक या बौद्धिक कला कुशलता की दृष्टि से उसमे कोई नयापन आया। उसके जीवन क्रम मे कोई खास परिवर्तन नही दिखाई देता है।

यह कथन अपेक्षाकृत सही है कि मानव ने पशु की अपेक्षा तुलनात्मक दृष्टि से काफी विकास किया है– शारीरिक, बौद्धिक, कलाकौशल्य, विज्ञान पद्धति आदि सभी दृष्टियो से। वैज्ञानिक प्रगति के कारण दुनिया छोटी हो गई है और लोग एकदम नजदीक-नजदीक आ गये है।

यह सब कुछ हुआ, लेकिन मानव ने जीवनोत्थान की दृष्टि से कितना विकास किया– क्या आपने इसकी कभी समीक्षा की है ? उसके मन-मस्तिष्क मे शान्ति का कितना प्रादुर्भाव हुआ ? वह ससार की तृष्णा से हटकर आत्म-सुख की ओर कितना आगे बढा ? यह समीक्षा जब निकालेगे तो वह बडी ही निराशाजनक प्रतीत होगी। पशु ने मनुष्य की तरह विकास नही किया तो मनुष्य की तरह उसने अपने जीवन मे वितृष्णा और अप्राकृतिकता भी नही बढाई है। पशु अपनी प्राकृतिक व्यवस्था की ही लकीर मे चलता है।

वर्तमान मानव ने भौतिक सुख सुविधाओ के क्षेत्र मे कितनी ही प्रगति की हो, किन्तु इन सुख सुविधाओ की चन्द लोगो के लिये सुलभता और बहुसख्या के लिये दुर्लभता होने के कारण मनुष्य मे जो उद्दाम लालसाएँ एव वितृष्णाएँ जागी है, उन के कुप्रभाव से वह दयनीय पतनावस्था की ओर आगे से आगे कगार तक बढता ही जा रहा है। आज उसका जीवन विषमताओ से भरा है, क्लेश पूर्ण है तथा विकृतियो से अशान्त बना हुआ है।

आन्तरिक शक्ति व शान्ति के अभाव मे दिशाहीन और गतिहीन मानव

भौतिक उपलब्धियो मे मानव कितना ही ऊँचा क्यो न पहुँच जाय, आन्तरिक शक्ति एव शान्ति के अभाव मे वह दिशाहीन और गतिहीन ही बना हुआ है। अमेरिका के राष्ट्रपति से पूछिये कि आप तो अति धनाढ्य देश के राष्ट्रपति है, विज्ञान भी आपके चरण चूमता है, आप के देशवासी मगलग्रह तक भी खोज तलाश कर रहे है तो फिर आपके तो हृदय मे पूर्ण शान्ति का निवास है न ? यदि वे सच्चे दिल से बतायेगे तो यही कहेगे कि मेरे समान दु खी और अशान्त अन्य कोई नही है। चाहे ऊपरी शान कितनी ही क्यो न हो– लेकिन जब तक भीतरी जीवन उलझा हुआ रहता है, तब तक न तो आन्तरिक शक्ति का विकास होता है और न ही आन्तरिक शान्ति मिलती है। ये दोनो नही है तो दिशा और गति भी नही है। वहॉ विकास की भावना का भी ह्रास होने लगता है।

दिशाहीन विकास नियन्त्रित विकास नही होने से सही विकास नही होता है और दिशाहीन विकास कब तक गतिशील बना रह सकता है ? नियन्त्रण के अभाव मे बिना ब्रेक की गाडी कही न कही तो दुर्घटनाग्रस्त हो ही सकती है या ठप्प पड सकती है। मानव जीवन के लिये यह ब्रेक आत्मशक्ति का ही हो सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव की सख्या की वृद्धि हुई, विकास का कार्यक्रम चला लेकिन जीवन शक्ति का उसका कार्यक्रम अधूरा ही रहा। इस कारण उसकी शान्ति की तुलना पशु से ही की जाय तो पता चलेगा कि पशु जितने आराम से नीद ले सकता है, उतने आराम से मनुष्य नही ले सकता है। पशु के पास मखमल के गद्दे तकिये नही है, बगले और पखे नही है फिर भी पशु सुख की नीद सोता है जो साधन सम्पन्न मनुष्य को सुलभ नही है। यह क्या उसकी दिशाहीनता का प्रमाण नही है ?

आज मनुष्य कितने जजालो मे डोल रहा है कि उसकी गति या तो विगति बन रही है या वह अगति बन रही है। क्या आज की अपनी दूषित वृत्तियो से वह पुन मानव जन्म प्राप्त कर सकेगा ? प्रश्न यह भी है कि आज मानव की जनसख्या जितनी बढ रही है, क्या उतनी ही पुण्यवानी भी बढ रही है ? चिन्तक व्यक्ति यह अनुभव करता है कि मानव की पुण्यवानी आज व्यय के खाते मे चल रही है। फिर जनसख्या कैसे बढ रही है ? या तो यह समझा जाय कि शास्त्रकारो ने ठीक नही कहा है या जनसख्या बढने का कोई दूसरा कारण है। यह तो सुनिश्चित है कि शास्त्रकार गलत नही कह सकते । उन्होने जो कुछ कहा, अपनी आन्तरिक अनुभूति से कहा। केवलज्ञानी के रूप मे उनके अन्तर्चक्षु इतने तीक्ष्ण होते है कि कोई भी वस्तु-स्वरूप उनकी दृष्टि से छिपा हुआ नही रहता है। वे सबको यथास्थान, यथा कार्य पद्धति से देखते है और देख कर कहते है। इसलिये उनका कथन सत्य है कि अनन्त पुण्यवानी सचित होती है, तभी मानव तन मिलता है। लेकिन वर्तमान मनुष्य ही पुण्यवानी का सचय कर सकता है– यह बात नही है अथवा सशय युक्त है। वर्तमान मे कई मानव ऐसे भव्य भी है जो अधिक से अधिक सद्कार्य कर रहे हैं। ऐसे सदाशयी मनुष्य भी कम नही हैं, लेकिन उनके पास दिखावा या प्रचार नही है– वे अपने क्षेत्र मे सरल एव शान्त चित्त से कार्यरत है।

किन्तु जिन मनुष्यो का बडा प्रचार होता है, उनके जीवन मे थोथापन भी अधिक मात्रा मे पाया जाता है। पानी का वही घडा छलकता है जो आधा भरा हुआ होता है। पूर्ण कुम सदैव शान्त रहता है। पूर्ण कुम के तुल्य मनुष्यो मे अतिशय पुण्यो का सचय होता है। लेकिन जिन मनुष्यो के कृत्यो को देखकर

पशु भी लज्जित होते है, वे पापाचारी मनुष्य अपनी पहले की सचित पुण्यवानी को खा रहे है– यही समझिये। वर्तमान जीवन मे वे कोई पुण्यवानी नही बाध रहे है तो इसके बाद किस योनि मे पहुँचेगे– इसका अनुमान आसानी से हो सकता है कि वह नरक योनि होगी या पशु योनि। आन्तरिक शक्ति एव शान्ति के अभाव मे मनुष्य जीवन की ऐसी ही दुर्गति अवश्यभावी होती है।

फिर भी जनसख्या क्यो बढ रही है ?
शास्त्रीय समाधान

फिर भी जनसख्या इतनी अधिक किस कारण बढ रही है– यह प्रश्न तो रह ही जाता है। इसके समाधान मे शास्त्रीय दृष्टि से चिन्तन करेगे तो मनुष्य योनि मे आने के चार साधन– चार खदाने है। इनमे से मानव की स्थिति निर्मित होकर आ रही है । ये चार साधन कौन से है ? पहला साधन है नरक। आज के क्रूर कर्मी मनुष्य अगले जन्म मे नरक मे जाते है। लेकिन नरक मे रहने वाली आत्माएँ शुभ पुण्यवानी का सचय करके पुन तिरछे लोक मे आती है। जिन आत्माओ को नरक मे जाने के बाद वहाँ की यातनाएँ सहने के कारण विगत मे अपने किये हुए पापो का भान हो जाता है तो फिर वे अपने आपको सुधारने का प्रयत्न करती है। जैसा कि यहाँ पर भी कई अपराधी जेल मे अपना सुधार कर लेते है। पश्चाताप के प्रभाव से ऐसा सुधार हो सकता है। पश्चाताप से पहले के पाप कर्म छूटते है तो नवीन शुभ कर्म बधते है। वह पुण्य कर्मो का उपार्जन नरक की अवधि समाप्त होने के बाद मनुष्य जीवन मे इस आत्मा को पहुँचा सकता है।

दूसरा साधन पशु योनि का है। पशु योनि मे आने वाले कई पशु दुनिया की बहुत सेवा करते है। गायो और बैलो को ही ले लीजिये। उनको खाने के लिये घास आदि तुच्छ पदार्थ देते है लेकिन ईमानदारी से गाएँ दूध देती है तो बैल खेती का परिश्रमी काम करते है। इस निश्छल सेवा से उनको पुण्यवानी का सचय होता है और मनुष्य योनि मे आने का अवसर मिलता है।

तीसरी खदान देव योनि की है। स्वर्ग मे देव दिव्य सुख का अनुभव करते है और जब उनकी पुण्यवानी खर्च हो जाती है तो वे फिर लौटकर मनुष्य योनि मे आते है। वहाँ भी नई पुण्यवानी बाध सकते है और मनुष्य योनि मे जन्म ले सकते है। इस स्थिति का सही अनुभव थली प्रदेश के लोग ले सकते है। जैसे वे कमाने के लिये परदेश जाते है और धनोपार्जन करके यहाँ मकान आदि की सुख सुविधाएँ भोगते है। जब धन खूट जाता है तो फिर परदेश चले जाते है।

उसी प्रकार देवो के लिये कमाई का क्षेत्र मनुष्य जीवन होता है। मनुष्य जीवन से आत्माएँ पुण्यवानी का सचय करके देव मोनि को प्राप्त करती है और वहाँ पुण्यवानी का व्यय करके नवीन अर्जन हेतु फिर मनुष्य योनि मे आ जाती है।

मनुष्य योनि के लिये चौथी खदान है स्वय मनुष्य योनि की। जो मनुष्य अपने जीवन मे लोगो की नि स्वार्थ भलाई करते है तथा पीडित मानवता की सेवा करते है, वे पुन मनुष्य योनि को प्राप्त करते है। इस दृष्टि से मनुष्यो की सख्या बढ रही है तो भगवान् की वाणी के अनुसार अनन्त पुण्यवानी के फलस्वरूप ही ऐसा हो रहा है। अब वे पूर्वजन्म की पुण्यवानी का दुरुपयोग करे– यह दूसरी बात है।

प्राप्त उपलब्धि के उपयोग का प्रश्न

दैव योग से किसी को एक स्वर्ण-थाल मिल जाय और उसकी जो व्यक्ति कीमत समझता है, वह उस थाल को कहाँ रखेगा ? बाहर मैदान मे खुला छोड देगा अथवा घर मे सुरक्षित रखेगा ? कदाचित् वह उस स्वर्ण थाल को त्यौहार के दिन बाहर निकाले और बच्चा उस थाल को बाहर ले जाकर रेत मे घसीटने लग जाय तो क्या वह उसे इस तरह घसीटने देगा ? चूकि उसकी कीमत आप समझते है तो बच्चे को वह थाल घसीटने नही देगे। लेकिन उसकी कीमत को जो नही समझता है, वह उसकी कद्र नही कर सकेगा। फिर बच्चा उसे बाहर रेत मे घसीटेगा या अन्य प्रकार से उसको विकृत भी बनावेगा तो उसे स्वर्ण थाल का दुरुपयोग ही कहा जायगा।

वैसे ही अनन्त पुण्यवानी से सौ सोने के थालो से भी कई गुना मूल्यवान यह मानव जीवन प्राप्त हुआ है और जो इस जीवन का सही मूल्याकन नही कर पाता है, वह एक तरह से सोने के थाल को नादान बच्चे के समान रेत में घसीट रहा है। इस अमूल्य मानव तन को धन लिप्सा की मशीन बनाकर उससे हर तरह का काम लिया जाता है। मशीन को भी सप्ताह मे एक छुट्टी दी जाती है लेकिन मानव अपनी मशीन को यह भी विश्राम नही देता। थोडा सा विश्राम वह दे तो उस के अनीति और अन्याय से बिगडे कल पुर्जो को कुछ सुधारने का समय मिल सकता है। यदि मनुष्य अपने जीवन को शुद्धि के मार्ग पर नही लगाता है तो वह इस अमूल्य जीवन का दुरुपयोग ही करता है। पहले का कर्म बंध जैसा होगा, वैसा फल उसको मिलेगा लेकिन इस जन्म मे नई पुण्यवानी न

बाध सकने से वह इस जीवन को समाप्त करके दुर्गति मे जायगा।

इस मानव जीवन का सदुपयोग यह होगा कि इसमे आत्मशुद्धि को विकसित बनाकर पुण्यवानी की जमा पूजी मे और बढोतरी करे अथवा समूचे कर्मबध का क्षयोपशम करते हुए मोक्ष मार्ग पर अग्रगामी बने। किन्तु यदा कदा किसी भाई से सन्त बोल देते है कि कुछ सामायिक– सवर करो और इस आत्मा को पवित्र बनाने मे यत्नशील होओ तो वह कह देता है– महाराज, चौबीसो घटे व्यापार धधे का ऐसा कामकाज रहता है कि इस काम के लिये फुरसत ही कहॉ है ? महाराज कहे कि भाई, रविवार को तो फुरसत रहती है, तब भी उत्तर आता है– रविवार को तो और भी ज्यादा काम रहता है। सोचिये कि ऐसा मनुष्य कितनी पुण्यवानी का सचय कर सकता है ? ऐसा मनुष्य इस दुर्लभ जीवन का दुरुपयोग कर रहा है– उसकी भारी बेकद्री कर रहा है। ऐसे मनुष्यो को फिर मनुष्य जन्म नही मिलगा। मानव तन की प्राप्त इस अमूल्य उपलब्धि के उपयोग का प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

एक मे चार–
ये और भी अधिक दुर्लभ है

भगवान् ने केवल दो हाथ और दो पैर वाले मनुष्य के लिये नही, आत्माभिमुखी मनुष्य के लिये कहा है कि यह एक मनुष्य जीवन अति दुर्लभ है, लेकिन इस एक मे भी ये चार और भी अधिक दुर्लभ है–

माणुसुत्त, सुई सद्धा, सजयम्मि य वीरिय।

मनुष्य जीवन कितनी दुर्लभता से मिलता है– इस पर आप विचार कीजिये। एक बार एक विदेशी विद्वान् दिन मे गैस की बत्ती जलाकर मनुष्यो की भारी भीड के बीच मे एक-एक मनुष्य की आकृति के सामने गैस रखकर उसको देखने लगे। लोगो ने कहा– यह आदमी पागल हो गया है। किसी ने पूछा आप यह क्या तमाशा कर रहे है ? विदेशी ने कहा– भाई यह तमाशा नही है, मै मनुष्य को खोज रहा हूँ। यह रूपक किस रूप मे क्या है– आप भी सोचे और अनुमान लगावे कि कितने मनुष्य है और कितने मनुष्यता से हीन है ? आप के पास भी कोई भीतर की लाईट हो तो अपनी ही मनुष्यता को तो कम से कम देख ले। मनुष्य जीवन दुर्लभ है, लेकिन मनुष्यता उससे भी अधिक दुर्लभ है।

भगवान् ने मनुष्य तन की उपलब्धि के बाद इन चार तत्त्वो को फिर दुर्लभ कहा है। ये चार तत्त्व है– मनुष्यता, सूत्र श्रद्धा, सयम और आत्म वीर्य।

मनुष्य तन मिल जाने के बाद मनुष्य के गुण अगर विकसित नही हुए तथा मनुष्यता नही आई तो उस मनुष्य जीवन को पाशविक अथवा राक्षसी जीवन की सज्ञा दी जायगी। मानवो की सख्या का बढ जाना पूर्व कर्मो का फल है तो नये पुण्य कर्मो के बधने की दृष्टि से भी मनुष्यता आनी आवश्यक है। मनुष्य अपने जीवन को आत्मशुद्धि की दिशा मे मोडे, तभी मनुष्यता का विकास होता है। आत्मशुद्धि के लिये अपने विचार, वचन एव व्यवहार मे समतामय परिवर्तन लाना सरल नही होता है इसीलिये मनुष्यता को दुर्लभ कहा गया है।

मनुष्यता विकसित होती है तो सूत्र याने कि वीतराग वाणी पर सच्ची श्रद्धा बनती है। इस सच्ची श्रद्धा के फलस्वरूप सयम की कर्मठता मिलती है और इन सोपानो के बाद ऊपर का सोपान आता है आत्म वीर्य का– आत्म-पराक्रम एव आत्म पुरुषार्थ का। आत्मा अपने स्वरूप की सारी मलिनता को धो लेने का सकल्प बनाती है और उसकी प्रक्रिया मे एकजूट होती है– यह उसका पराक्रम कहलाता है। ऐसी पराक्रमी आत्मा अपने जीवन को स्थायी रूप से मोक्ष के मार्ग पर अग्रसर बना देती है। इसी क्षमता के कारण इन चारो तत्त्वो की दुर्लभता बताई गई है। चार मे एक और एक मे चार इस तरह दुर्लभ होते है।

मानव जीवन का महान् लक्ष्य है–
इसको चरमावर्त बनालो !

ससार सागर की विभिन्न योनियो के आवर्त मे– भवर मे यह आत्मा गोते खाती आ रही है। इसलिये मनुष्य जीवन का महान् लक्ष्य यह बताया गया है कि ऐसी उत्कृष्ट आत्म-साधना करो जिससे यह जीवन आत्मा के लिये चरम (अन्तिम) आवर्त (भवर) बन कर रह जाय अर्थात् इस आवर्त से निकल कर आत्मा ससार सागर को पार कर जाय। प्रार्थना मे कवि ने यही सकेत दिया है–

चरमावर्त हो चरण करण तथा रे
भव परिणति परिपाक।

मनुष्य तन पहले भी बहुत बार पा लिया, लेकिन उसमे चरमावर्त का सुयोग नही बना। अत्यधिक पुण्यवानी का जब योग होता है तथा मनुष्यता, सूत्र श्रद्धा, सयम एव आत्म पराक्रम के चारो अगो का सयोग बैठता है तब चरमावर्त का चरण करण बन सकता है। इस करण की व्याख्या इस रूप मे की गई है कि अनादिकाल से जो आत्मा मिथ्यादृष्टि बनी हुई है, वह जब सम्यक्त्व को प्राप्त करती है तथा सम्यक्त्वी जीवन को सर्वोत्कृष्ट श्रेणी मे पहुँचाती है, तब चरमावर्त

के चरण करण का उदय सभव बनता है।

चरमावर्त का चरण करण जिन ऐतिहासिक पुरुषो का बना तो उनका जीवन अनूठी तेजस्विता से ओत-प्रोत हो गया। आज के मानव को भी यह सोचना है कि हमे किसी सन्त के कहने की या दूसरो के कहने की स्थिति नही आवे– हम अपने आप देखे कि हमारा जीवन किस स्तर पर चल रहा है, उसकी समीक्षा करे तथा उसको ऐसे साधना पथ पर आगे बढावे कि चरमावर्त का चरण करण योग बन जाय। किसी के आसू गिराने की दिशा मे नही, सभी दु खियो के आसू पौछाने की दिशा मे आगे बढे। मनुष्य तन को प्राप्त कर लेने मात्र से आत्म कल्याण नही होगा। उसके लिये दुर्लभ चारो अगो का सम्यक् विकास साधना होगा– अपने सम्यक्त्व को सर्वोत्कृष्ट गुणस्थान तक पहुँचाना होगा। मानव जीवन की महान् महिमा ही यह है कि इसका सम्पूर्ण सदुपयोग करते हुए इस जीवन को चरमावर्त बना ले।

नोखा
६.१०.७६



2

सन्त समागम का सत्प्रभाव

श्री संभव देव ते धुर
सेवो सवे रे .

परमात्मा की प्रार्थना जीवन को पवित्र बनाने के उद्देश्य से की जाती है। प्रभु वीतराग देव ही सिद्ध अवस्था मे सदा काल के लिये विद्यमान है। वे यहाँ आ नही सकते, लेकिन हमारी आत्मा उनको आदर्श रूप मे मानकर उन का ध्यान करती हुई स्वय भी परमात्म पद के योग्य बन सकती है।

योग्य बनने मे उपादान और निमित्त भाव की भी आवश्यकता होती है। उपादान कारण आत्मा की स्वय की आन्तरिक भावना और निज शक्ति के रूप मे होता है, परन्तु निमित्त कारण परमात्म स्वरूप की आराधना, आध्यात्मिक ग्रथो की स्वाध्याय आदि शुभ साधन हो सकते है किन्तु इन सबका भी निमित्त कारण मूल रूप मे सन्त समागम को मानना चाहिये। सन्त इस ससारी आत्मा को आध्यात्मिकता का पाठ अ आ से शुरू करके आत्मिक शक्तियो के प्रकटीकरण तक कुशलता से पढा सकते हैं, इसलिये सन्त समागम से बढकर कोई भी दूसरा निमित्त व्यापक रूप से प्रभावशाली नही हो सकता है।

सन्त-समागम आत्म जागृति का आधार

सन्तो के समागम से या सन्तो के निमित्त से आत्म जागृति का परिपुष्ट आधार बनता है और कई आत्माएँ शीघ्रता से समुन्नत बन जाती हैं। इस आत्मोत्थान की प्रक्रिया मे निमित्त कारण की भी पूर्ण आवश्यकता होती है। उपादान और निमित्त की चर्चा विशेष रूप से तो अभी करने का प्रसग नहीं है, लेकिन सक्षेप मे यह समझ ले कि उपादान उस शक्ति या कारण को कहे जो

कार्य रूप मे परिणित हो जाय और निमित्त वह है जो कार्य का सम्पादन करता है। पुरुष वह स्वयं अलग है, उसमे मिलता नही है।

यह कपडा आप पहन करके या ओढ करके बैठे है, यह किससे बना है ? यह सूत के धागो से बना है। सूत के धागो मे कपडा बुनने की योग्यता नही होती तो कपडा बुन पाता क्या ? सूत के धागे उपादान कारण है। ये कपडे के रूप मे परिणित हो गये क्योकि उपादान कारण की शक्ति इन धागो मे थी। लेकिन कपडा बुनने वाला या बुनकर नही मिलता तो क्या कपडा बुन पाता ? जिन व्यक्तियो का यह कहना है कि उपादान कारण ही सब कुछ होता है, निमित्त कुछ नही करता तो उनका वैसा कथन अधूरे ज्ञान का ही परिचायक होगा । यदि उपादान ही सब कुछ हो तो रूई मे उपादानता है, इसलिये रुई को धागे के रूप मे किसी के द्वारा कातने की कोई आवश्यकता नही है। इसी तरह सूत के धागो को भी कपडे के रूप मे बुनने की कोई आवश्यकता नही है। रूई खुद ही धागो मे और धागे कपडो मे बदल जाने चाहिये। लेकिन ऐसा होता नही है और सूत के धागो को कपडे मे बदलने के लिये बुनकर की जरूरत पडती है। यह बुनकर निमित्त कारण कहलाता है। बुनकर ही धागो को जोडकर कपडे के रूप मे उन्हे परिवर्तित करता है। कोई कह दे कि निमित्त कारण ही सब कुछ है तो वह भी सही नही है। कोई ना माने तो भी सही नही होगा कि उपादान और निमित्त धारण ही सब कुछ है। कारण, कल्पना करे कि बुनकर चतुर है और धागा भी अच्छा है लेकिन अगर धागो को बुनने का साधन करधा आदि नही है तो क्या कपडा बुना जायगा ?

इस तरह कार्य सम्पादन मे तीन की आवश्यकता हुई– 1. उपादान कारण, 2 निमित्त कारण तथा 3 समष्टिकरण सामग्री। तीनो जब मिलेगे तभी कोई काम बनेगा चाहे वह छोटे से छोटा काम ही क्यो न हो ? यही सिद्धान्त आत्म-जागृति के लिये भी लागू होता है। जो उपादान कारण रूप धागा है, उसे आत्मा का रूपक समझिये। अब निमित्त कारण रूप बुनकर की आवश्यकता है, वह निमित्त कारण होता है सन्त-समागम । गुरु आत्मा को वह कला सिखाता है जिससे आत्मा परमात्म स्वरूप मे परिवर्तित हो जाती है। 'बलिहारी गुरु देव की, जो गोविन्द दियो बताय' की उक्ति आप जानते है। इस रूप मे आत्म जागृति का आधार निमित्त कारण की दृष्टि से सन्त-समागम होता है।

सन्त का स्वरूप तथा समागम का सत्प्रभाव

आत्म जागृति का निमित्त कारण वही सन्त होता है जिसके गुणो की शास्त्रकारो ने परिभाषा दी है। वे कहते है कि सन्त और गुरु वही है जो अन्तरात्मा के लिये श्रद्धा का केन्द्र होता है, जो आत्म सशोधन की प्रेरणा देता है तथा जिसके निमित्त से आत्मा उज्ज्वलतर स्वरूप ग्रहण करती है। गुरु के सान्निध्य मे जाने से मनुष्य के कई दोष तथा सचित पाप सहज रूप मे ही समाप्त हो जाते है।

मनोविज्ञान की बारीकी मे उतर कर देखे और अनुभव करे तो प्रतीत होगा कि जब श्रद्धावनत होकर कल्याण कामना से कोई व्यक्ति सद्गुरु के समीप मे पहुँचता है तो अनायास रूप से उनके त्याग का सत्प्रभाव उस व्यक्ति के हृदय पर गिरने लगता है। वह भीतर ही भीतर अपने को गुरु के शुक्ल प्रभाव से प्रभावित अनुभव करता है तथा उस प्रभाव के कारण उसकी भावनाओ मे परिवर्तन आने लगता है। उस समय जो उज्ज्वलता आती है, उससे बुरे पाप कर्म स्वतः हटते जाते है और आत्म जागृति का स्वरूप उज्ज्वलतर होता जाता है।

जैसे कोई व्यक्ति गटर के गन्दे वातावरण मे काम करता हुए ऐसे वन मे या उपवन मे पहुँच जावे, जहॉ सुवासित गुलाब के फूल खिले हुए हो तो बताइये कि उस व्यक्ति को कैसा अनुभव होगा ? जिस दुर्गंध से उसका नाक भरा हुआ था– उसका मस्तक भनभना रहा था, वहॉ गुलाब की भीनी-भीनी सुगन्ध उसके नाक मे पहुँचेगी तो स्वाभाविक रूप से उसको भला महसूस होगा। उसका मस्तक तरोताजा बनकर हल्का हो जायगा। उस स्वस्थ मन मस्तिष्क के साथ जब वह जीवन की समस्याओ को सुलझाने के लिये बैठेगा तो वह उनका सुन्दर समाधान भी निकाल लेगा । जैसे भीषण गर्मी से तपा हुआ व्यक्ति शीतल सरोवर के समीप पहुँच कर शान्ति का अनुभव करता है, उसी प्रकार ससार के कष्टो से व्यथित बना हुआ भव्य प्राणी जब सद्गुरु की सेवा मे पहुँचता है– उनके समागम मे आता है तो उसे अनुपम आत्मिक शान्ति की अनुभूति होती है। सरोवर के जल को नही छुए उससे पहले ही उसकी लहरो को स्पर्श करके आने वाली वायु की हिलोर उसके तापतप्त तन को शीतल स्पर्श देती है, वैसे ही गुरु के चारो ओर के वातावरण मे ही उसको शीतलता का आभास हो जाता है तथा सरोवर का शीतल जल जब वह पी लेता है याने कि गुरु की सेवा में जुट कर

उनके ज्ञान और कर्म को अपने अन्त करण मे उतारने लगता है तब तो उसके भीतर बाहर सब और शान्ति विराजमान हो जाती है। वह आत्म तृप्ति से आनन्द विभोर बन जाता है। श्रेष्ठ सन्तो के समागम का सत्प्रभाव अतुलनीय होता है।

साधु के साथ सम्पर्क . साधुता की ओर प्रयाण

जो सच्चे मन से साधु के सम्पर्क मे पहुँचता है और साधुता के स्वरूप को परख कर अपने जीवन मे परिवर्तन लाता है, वह अवश्य ही साधुता की ओर प्रयाण कर देता है। जब प्राकृतिक तत्त्वो के वास्तविक सम्पर्क मे भी शान्ति और आनन्द का अनुभव होता है तो सोचिये कि उस बाहरी आनन्द की तुलना मे सन्त समागम से मिलने वाला आत्मिक आनन्द कितना गहरा और कितना सुखदायक होता है ? कवि का सकेत है कि–

परिचय पातिक घातक साधु शु रे,
अकुशल अपचय चेत।
ग्रथ अध्यातम श्रवण मनन करि रे
परिशीलन नय हेत।।

कितनी आध्यात्मिक विज्ञान की बात इसमे कही गई है ? साधु से परिचय– साधु से सम्पर्क पाप का घात करने मे एक अमोघ उपाय सिद्ध होता है। यदि सच्चे सत के पास कोई पहुँचेगा तो उसके दिल का नक्शा बदले बिना नही रहेगा। वह उस त्यागी को भी देखेगा तथा अपने को भी देखेगा और सोचेगा कि ये कहॉ है और मै कहॉ हूँ ? उस चिन्तन मे उसको दिखाई देगी उसकी अपनी अन्तर्वृत्तियॉ कि वे सन्त की त्यागमय वृत्तियो की तुलना मे कितनी दलित बनी हुई है ? साधु के साथ सम्पर्क का ऐसा ही अनुपम प्रभाव पडता है।

कल दीक्षा-स्थल पर आपने देखा होगा कि दीक्षित होने वाली आत्मा जब जनता के समक्ष खडी हुई तो उस वक्त उसके मन मे क्या कुछ आन्दोलन चल रहा था और कैसी भाव भगिमा उठ रही थी ? जब उनके परिजनो को देखा होगा तब दर्शको के मन मे कितनी उथल पुथल मची होगी और किस प्रकार की भावनाओ की लहरे जगी होगी ? क्या आपके दिल मे नही आया कि कहॉ तो छोटी से छोटी चीजो का त्याग करने मे लोगो को हिचकिचाहट आती है और कहॉ वह आत्मा सारे परिवार का मोह ममत्व त्याग कर साध्वी बन गई ? आपने

सन्त का स्वरूप तथा समागम का सत्प्रभाव

आत्म जागृति का निमित्त कारण वही सन्त होता है जिसके गुणो की शास्त्रकारो ने परिभाषा दी है। वे कहते है कि सन्त और गुरु वही है जो अन्तरात्मा के लिये श्रद्धा का केन्द्र होता है, जो आत्म सशोधन की प्रेरणा देता है तथा जिसके निमित्त से आत्मा उज्ज्वलतर स्वरूप ग्रहण करती है। गुरु के सान्निध्य मे जाने से मनुष्य के कई दोष तथा सचित पाप सहज रूप मे ही समाप्त हो जाते है।

मनोविज्ञान की बारीकी मे उतर कर देखे और अनुभव करे तो प्रतीत होगा कि जब श्रद्धावनत होकर कल्याण कामना से कोई व्यक्ति सद्‌गुरु के समीप मे पहुँचता है तो अनायास रूप से उनके त्याग का सत्प्रभाव उस व्यक्ति के हृदय पर गिरने लगता है। वह भीतर ही भीतर अपने को गुरु के शुक्ल प्रभाव से प्रभावित अनुभव करता है तथा उस प्रभाव के कारण उसकी भावनाओ मे परिवर्तन आने लगता है। उस समय जो उज्ज्वलता आती है, उससे बुरे पाप कर्म स्वत हटते जाते है और आत्म जागृति का स्वरूप उज्ज्वलतर होता जाता है।

जैसे कोई व्यक्ति गटर के गन्दे वातावरण मे काम करता हुए ऐसे वन मे या उपवन मे पहुँच जावे, जहॉ सुवासित गुलाब के फूल खिले हुए हो तो बताइये कि उस व्यक्ति को कैसा अनुभव होगा ? जिस दुर्गंध से उसका नाक भरा हुआ था– उसका मस्तक भनभना रहा था, वहॉ गुलाब की भीनी-भीनी सुगन्ध उसके नाक मे पहुॅचेगी तो स्वाभाविक रूप से उसको भला महसूस होगा। उसका मस्तक तरोताजा बनकर हल्का हो जायगा। उस स्वस्थ मन मस्तिष्क के साथ जब वह जीवन की समस्याओ को सुलझाने के लिये बैठेगा तो वह उनका सुन्दर समाधान भी निकाल लेगा । जैसे भीषण गर्मी से तपा हुआ व्यक्ति शीतल सरोवर के समीप पहुॅच कर शान्ति का अनुभव करता है, उसी प्रकार संसार के कष्टो से व्यथित बना हुआ भव्य प्राणी जब सद्‌गुरु की सेवा मे पहुॅचता है– उनके समागम मे आता है तो उसे अनुपम आत्मिक शान्ति की अनुभूति होती है। सरोवर के जल को नही छुए उससे पहले ही उसकी लहरो को स्पर्श करके आने वाली वायु की हिलोर उसके तापतप्त तन को शीतल स्पर्श देती है, वैसे ही गुरु के चारो ओर के वातावरण मे ही उसको शीतलता का आभास हो जाता है तथा सरोवर का शीतल जल जब वह पी लेता है याने कि गुरु की सेवा मे जुट कर

उनके ज्ञान और कर्म को अपने अन्तकरण मे उतारने लगता है तब तो उसके भीतर बाहर सब और शान्ति विराजमान हो जाती है। वह आत्म तृप्ति से आनन्द विभोर बन जाता है। श्रेष्ठ सन्तो के समागम का सत्प्रभाव अतुलनीय होता है।

साधु के साथ सम्पर्क . साधुता की ओर प्रयाण

जो सच्चे मन से साधु के सम्पर्क मे पहुँचता है और साधुता के स्वरूप को परख कर अपने जीवन मे परिवर्तन लाता है, वह अवश्य ही साधुता की ओर प्रयाण कर देता है। जब प्राकृतिक तत्त्वो के वास्तविक सम्पर्क मे भी शान्ति और आनन्द का अनुभव होता है तो सोचिये कि उस बाहरी आनन्द की तुलना मे सन्त समागम से मिलने वाला आत्मिक आनन्द कितना गहरा और कितना सुखदायक होता है ? कवि का सकेत है कि–

परिचय पातिक घातक साधु शु रे,
अकुशल अपचय चेत।
ग्रथ अध्यातम श्रवण मनन करि रे
परिशीलन नय हेत।।

कितनी आध्यात्मिक विज्ञान की बात इसमे कही गई है ? साधु से परिचय– साधु से सम्पर्क पाप का घात करने मे एक अमोघ उपाय सिद्ध होता है। यदि सच्चे सत के पास कोई पहुँचेगा तो उसके दिल का नक्शा बदले बिना नही रहेगा। वह उस त्यागी को भी देखेगा तथा अपने को भी देखेगा और सोचेगा कि ये कहॉ है और मै कहॉ हूँ ? उस चिन्तन मे उसको दिखाई देगी उसकी अपनी अन्तर्वृत्तियॉ कि वे सन्त की त्यागमय वृत्तियो की तुलना मे कितनी दलित बनी हुई है ? साधु के साथ सम्पर्क का ऐसा ही अनुपम प्रभाव पडता है।

कल दीक्षा-स्थल पर आपने देखा होगा कि दीक्षित होने वाली आत्मा जब जनता के समक्ष खडी हुई तो उस वक्त उसके मन मे क्या कुछ आन्दोलन चल रहा था और कैसी भाव भगिमा उठ रही थी ? जब उनके परिजनो को देखा होगा तब दर्शको के मन मे कितनी उथल पुथल मची होगी और किस प्रकार की भावनाओ की लहरे जगी होगी ? क्या आपके दिल मे नही आया कि कहॉ तो छोटी से छोटी चीजो का त्याग करने मे लोगो को हिचकिचाहट आती है और कहॉ वह आत्मा सारे परिवार का मोह ममत्व त्याग कर साध्वी बन गई ? आपने

यह दृश्य आखो से देखा और सारी बात कानो से सुनी । ऐसे समय मे तो साधुता की ओर प्रयाण करने का मन आपका भी हुआ होगा, आखिर कई भव्य आत्माएँ इस प्रकार जागृत बनती ही है तथा साधु के साथ सम्पर्क कम से कम भावनाओ को उस दिशा मे उद्वेलित तो बनाता ही होगा । साधु सम्पर्क अथवा सन्त समागम का शुभ प्रभाव पडे बिना नही रहता है।

ऐसे बहुतेरे के प्रसग बन जाते है जिनके द्वारा सन्त समागम के सत्प्रभाव का स्पष्टीकरण होता है। पूज्य श्री श्रीलालजी म.सा. की बात कान मे आई हुई है कि एक बार चार मुमुक्षु आत्माएँ दीक्षा लेने के लिये तैयार बैठी हुई थी और उनकी हजामत के लिये नाइयो को बुलवाया गया तो चार की बजाय पांच नाई आ गये। चार नाई तो दीक्षार्थियों का मुडन करने के लिये बैठ गये, लेकिन पाचवां नाई उदास सा एक तरफ बैठ गया और उसकी आखों से आसू गिरने लगे। एक सेठ वहाँ बैठा हुआ था, उसको रोते हुए देखकर पूछने लगा– भाई, तू रोता क्यो है ? उसने कहा कि मेरे चारो साथियो के तो अच्छी आय हो जायगी और मै वैसे ही रह जाऊंगा। सेठ ने कहा तू खाली बच गया, इसलिये रो रहा है। सेठ ने पास ही बैठे हुए अपने पुत्र से कहा कि तू सहमत हो जाता हो तो मै भी दीक्षा ले लूं। पुत्र भी भावना वाला था और उसने कोई आपत्ति नही की। उन्होने अपने कपडे उतारे और पाचवे नाई से कहा– ले भाई, तू मुझे भी मूड दे। ऐसी आत्म जागृति का परिचय सन्त समागम से ही सभव बनता है।

उन्नति में प्राप्त सत सहायता शीघ्र उच्च शिखर पर पहुँचा देती है

साधु के त्यागमय सम्पर्क से एक व्यक्ति के मन मे आत्मोन्नति का अकुर फूटता है तो संतो की प्रतिबोध सहायता से वही छोटा सा अकुर विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। त्यागी जीवन का सम्पर्क किस प्रकार एक व्यक्ति को त्याग की दिशा मे मोड देता है– यह सारे ससार मे आध्यात्मिक जीवन का अति महत्त्वपूर्ण तथा ज्ञातव्य मुद्दा है। इसका सही मूल्यांकन भावनाशील व्यक्ति ही कर सकते है। जिसकी बुद्धि इस स्तर की नही होती है कि वे सन्त समागम मे इस प्रकार की अनुभूति जागृत करे, वह आत्मा भले ही उसके महत्व को न जान पाए, वरना सन्त समागम के पवित्र वायुमडल का सत्प्रभाव पडना अवश्यंभावी है।

उत्तराध्ययन सूत्र मे महावीर प्रभु ने कहा है कि जो आध्यात्मिक जीवन मे सहायक बनना चाहते है, उन्हे पहले निपुण बुद्धि वाला बनना चाहिये। निपुण

बुद्धि उसको कहते है जो अपने जीवन को सार्थक बना लेता है, श्रेष्ठ आत्मिक गुणो को धारण कर लेता है तथा तदनुसार उत्कृष्ट आचरण का निर्माण कर लेता है। योग्य को सहायक बनाते है तो बहुत बडी सहायता मिल जाती है। उस सहायता से आत्मशक्ति का विकास त्वरित गति से होने लगता है। सन्तो के सामने चाहे व्यक्ति पहले कठोर बन कर जाता है, लेकिन जिसकी आत्मा मे पवित्रता की उत्कठा होती है, वह उनके समागम मे रह जाने के बाद कोमल हृदय वाला भी बन जाता है तथा विकास के सही मार्ग को भी पकड लेता है। चन्दन को काटने की कुल्हाडी धूप मे पडी रहने से भले ही गरम हो रही हो, लेकिन जब वह चन्दन की लकडी को छुएगी तो वह शीतल भी हो जायगी तथा सुगन्धित भी बन जायगी। सन्तजनो का शीतल और शान्तिदायक परिचय क्रूर से क्रूर हृदय को भी शीतल और शान्त बना देता है। किसी भव्य प्राणी की उन्नति मे प्राप्त सन्त सहायता उसे शीघ्र ही उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचा देती है।

जहॉ राजा परदेशी के हाथ सदा खून से लथपथ रहते थे और वह तलवार हाथ मे लेकर घूमता रहता था कि कोई प्राणी मिले और उसे वह मौत के घाट उतार दे। वह कहता था कि मेरी तलवार के सामने परमात्मा भी आ जाय तो उसको भी देख लू। उसने प्राणी हत्या का यह उद्देश्य बताया कि वह आत्मा को देखना चाहता है, लेकिन उसे आत्मा दिखाई नही दी। जैसे ही वह केशी श्रमण के समीप मे पहुँचा तो सबसे पहले उसके मन मे कौतूहल जगा– पहला प्रश्न यह उठा कि कौन जडमूर्ख बैठे है तथा कौन जडमूर्ख उनसे कुछ कह रहा है। यह प्रश्न उसने अपने मन मे ही रखा और दीवान से पूछा कि यह कौन है ? दीवान ने कहा– राजन् ये महात्मा आत्मा एव परमात्मा का स्वरूप बताने वाले है तथा इनका नाम केशी श्रमण है। राजा ने पूछा– क्या ये मुझे भी आत्मा का स्वरूप बता सकते है ? दीवान ने कहा– आप पधारेगे तो अवश्य बतायेगे।

परदेशी राजा नास्तिक था। वह केशीश्रमण की धर्म सभा के एक किनारे ही खडा रहा तथा उसने हाथ भी नहीं जोडे। केशीश्रमण ने ही सम्बोधन किया– ओ परदेशी राजा। यह सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ कि उन्होने मुझे पहिचाना कैसे ? वह चकित हो ही रहा था कि केशीश्रमण ने फिर कहा– राजन्, आप वृक्ष के नीचे खडे यह सोच रहे थे कि कौन जडमूर्ख बैठे है और कौन जड मूर्ख उनसे कुछ कह रहा है ? यह सुनकर तो राजा आश्चर्यचकित हो गया कि इन्होने मेरे मन की वह बात भी कैसे जान ली, जो मैने प्रकट तक नही की ? उसे लगा कि

इन महात्मा की ज्ञान शक्ति अलौकिक है। राजा परदेशी के मन पर पडे पर्दे के उठने का समय आ गया था। फिर दोनो के बीच सवाद शुरू हुआ। राजा ने आत्मा के विषय मे कई प्रश्न पूछे और केशीश्रमण से उनका समाधान पाकर उसको सन्तोष हुआ । राजा परदेशी को मिली यह सन्त सहायता थी कि उसका जीवन एकदम परिवर्तित हो गया।

अहं भाव न रखे
तथा सन्त से जो मिले, ग्रहण करें

कभी-कभी कॉलेजो मे अध्ययन-अध्यापन करने वाले व्यक्ति अपने ही ज्ञान को सब कुछ समझकर चलते है। एक बार एक तरुण छात्र कॉलेज से शिक्षा लेकर अपने निवास की ओर जा रहा था। रास्ते मे उसको एक सन्त मिल गये, जिन के पैरो मे जूते नही, मुख पर मुख वस्त्रिका, हाथ मे रजोहरण व पात्र तथा साधु के कपडे थे। सन्त को देखकर तरुण छात्र का रोष उबल पडा कि ऐसे व्यक्ति निठल्लो की तरह घूमते है, कुछ कमाते नही– मुफ्त का खाते है और दुनिया का कोई भला काम नही करते। सन्त के सामने जो उसने बोलना शुरू किया तो वह दनादन बोलता ही गया– अपशब्द कहने से भी नही चूका।

इतनी अहभाव की बाते कोई आपको सुनादे तो क्या आपके मन मे उथल-पुथल नही मच जायगी ? आप भी शायद सुनाने लगे कि तू दूसरो का दोष निकाल रहा है, अपना जीवन तो सभाल। अपने जीवन की कैसी दशा है और हमको सुनाने चला है। इसके बाद यदि कोई शिष्टता भी छोड दे तो भले ही मारा-मारी पर उतारू हो जांय। व्यर्थ के अहभाव को कौन सहन करता है ? वे महात्मा उस तरुण की बाते सुनकर वही खडे रह गये। उन्हे जरा भी उत्तेजना नही आई। वे सोचने लगे कि गुणगान करने वाले तो बहुत मिलते है लेकिन ऐसी बाते सुनाने वाला विरला ही मिलेगा। जब छात्र बोलते-बोलते थक गया और महात्मा कुछ नही बोले तो वह भी चुप हो गया।

तब महात्मा ने धीरे से कहा– क्या आप मेरे एक छोटे से प्रश्न का उत्तर देगे ? जब प्रश्न का उत्तर देने की बात उसने सुनी तो उसका अहभाव तीखा बनकर बोल उठा– हम जवाब नही देगे तो और कौन देगा ? महात्मा बोले– देखो, एक व्यक्ति ने जो उसके पास सम्पत्ति थी सबकी सब अपने मकान के बाहरी चबूतरे पर फैला दी और ऐलान कर दिया कि जो चाहे जितनी वहॉ से ले जावे। तब भी कोई कुछ नहीं ले गया तो वह सम्पत्ति किसकी रहेगी, बता सकेगे

आप ? छात्र ने कहा– इसमे क्या है, कोई नही ले गया तो सम्पत्ति उसी की रहेगी जिसकी थी। मुनि शान्त भाव से कहने लगे– तुमने ठीक कहा है। तुम इतनी देर तक अपनी सम्पत्ति भीतर से निकाल-निकाल कर मुझे देते रहे, लेकिन मुझे उसमे से किसी की तनिक भी आवश्यकता नही है। तो आप समझ गये न, कि ये सारी बाते किसकी रही ? कर्म बन्धन का भागी कौन हुआ ? जीवन की वास्तविक उन्नति की दृष्टि से सन्त सहायता से कौन वचित रहा ? क्षति किसके जीवन की हुई है ? यह सब सुनकर वह छात्र पानी पानी हो गया। उसका अहभाव टूटा, उसका दिल बदला और फिर उसने सन्त से जो ग्राह्य मिला, ग्रहण किया।

सच्चे सन्तो के समागम मे जावे, उनके सामने व्यर्थ का अपना अहभाव बनाये न रखे तथा सन्तो से जो तत्त्व मिले, उसे अपने जीवन मे ग्रहण करके आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त बनावे।

सन्त समागम सदा ही हितावह और सुखकारी होता है

इस सत्य को हृदयगम करले कि सन्त समागम सदा ही हितावह और सुखकारी होता है क्योकि इससे पाप कर्मो का घात होता है, मन की मलिनता मिटती है एव त्याग मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा जागती है। लेकिन साधु के परिचय मे पहुँचने वाला व्यक्ति जिद्दी और हठी नही होना चाहिये, बल्कि सरल चित्ती जिज्ञासु एव स्वाध्यायी होना चाहिये ताकि हठाग्रह से दूर रहकर सन्तो के ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य का दीपक वह अपने अन्तकरण मे भी सजो सके।

सन्त समागम के सत्प्रभाव को एक हठाग्रही व्यक्ति मन मे मानकर भी उसे बाहर प्रकट नही करता तथा उसके अनुसार चलना नही चाहता। इसलिये मन का सरलीकरण अवश्य होना चाहिये और सरल मन के साथ ही सन्तो का समागम करना चाहिये। ऐसी अवस्था मे सन्त समागम का सत्प्रभाव जीवन मे सक्रिय एव उन्नायक रूप अवश्य लेगा।

नोखा
९.१०.७६

❑❑❑

3

निपुण बुद्धि की आवश्यकता

समव देव ते धुर
सेवो सवे रे ....

जीवन के परिपूर्ण विकास की दृष्टि से साध्य और साधन दोनो की आवश्यकता होती है। आत्म शुद्धि स्थायी रूप मे सदा काल के लिये बनी रहे– यह साध्य है। इस शुद्धि के लिये जिन उपायो को सफलतापूर्वक जीवन के साथ सम्बन्धित किया जाता है–वे साधन है। साधन की स्थिति मे बहुतेरे साधनो का प्रसंग आ सकता है। सन्त जीवन से परिचय, उसके फलस्वरूप प्राप्त आध्यात्मिक जीवन की रुचि तदनुरूप पुरुषार्थ का संकल्प, उस सकल्प को कार्यान्वित करने के लिये वैसे ही साथियो का सहयोग– ये सब साधनो के अन्तर्गत है। इन सब साधनो को समन्वित बनाकर कार्यरत करने हेतु निपुण बुद्धि की आवश्यकता होती है। यह निपुण बुद्धि एवं सर्वथा साधनों का श्रेष्ठ सयोग बिठाते हुए आत्मा को साध्य की ओर उन्मुख बनाती है तो प्रगति की गति को भी तीव्रता प्रदान करती है।

बुद्धि की निपुणता साधनों व साध्य के समन्वय में

शास्त्रकारो ने संकेत दिया है कि–

"सहे या मिच्छे निवच्छाकु.. ....."

अर्थात् सबसे पहले बुद्धि की निपुणता इसमे है कि विकास यात्रा मे ऐसे सहयोगी का चयन किया जाय जो स्वयं बुद्धि निपुण हो तथा बुद्धि की निपुणता को सम्यक् प्रेरणा दे सके कहा है, सहयोगी ऐसा हो कि जिसकी बुद्धि निपुण

होकर निपुण अर्थ को ग्रहण करने वाली हो अर्थात्– आध्यात्मिक जीवन के परिपूर्ण स्वरूप का अवलोकन करने वाली, जगत् के दृश्य पदार्थो का समुचित रूप से विश्लेषण करने वाली तथा भौतिक जगत् एव आध्यात्मिक जगत् के बीच मे क्या कुछ लगाव है– इसका अन्वेषण करके उस लगाव का श्रेष्ठ समन्वय साधने वाली पराबुद्धि अर्थात् परा-तत्त्व को परा छोर तक जानने की शक्ति पैदा करने वाली बुद्धि को निपुणार्थ बुद्धि कह सकते है। बुद्धि की निपुणता नापने का तथा उसकी सार्थकता का यह श्रेष्ठ मापदड है।

बुद्धि की निपुणता इस दृष्टि से साधनो तथा साध्य के समन्वय, साधनो के श्रेष्ठ चयन तथा साध्य के प्रति एकाग्रता मे निहित मानी जानी चाहिये। साध्य-साधन का एकाकार स्वरूप स्थापित करने मे जो कुशलता का परिचय देना है– वही बुद्धि की निपुणता है। बुद्धि की गतिशीलता का यही प्रमुख केन्द्र भी है।

बुद्धि प्रत्येक आत्मा के निजी गुण के रूप मे विद्यमान रहती है। वह एक तरह से स्वतत्र शक्ति नही होती है। यदि आत्म स्वरूप से विपरीत दिशा मे बुद्धि जाती है तो वह उसकी स्वतत्रता नही, बल्कि स्वच्छदता होती है जो आत्म घातक कहलाती है। बुद्धि का निपुणार्थ प्राथमिक स्तर पर यही माना गया है कि बुद्धि की स्वच्छदता को रोक कर बुद्धि को आत्मानुशासन मे लेवे। आत्मा के गुण के रूप मे आत्मा के नियत्रण के साथ जब बुद्धि गति करती है तो वह निपुण बुद्धि के रूप मे आत्म-शुद्धि को सर्वोच्च स्थान देती है। ऐसी निपुण बुद्धि वाला पुरुष जब किसी विकासोन्मुख आत्मा का सहयोगी बनता है तो उस विकासोन्मुख आत्मा की बुद्धि का भी सम्यक् विकास होता है तथा उसकी बुद्धि भी निपुण बुद्धि बन जाती है। बुद्धि की निपुणता से तब साध्य की प्राप्ति मे कठिनाइयॉ नही टिकती एव साध्य की सिद्धि मे सफलता समीप आ जाती है।

साधनो व साध्य के समन्वय मे जब निपुण बुद्धि सफल हो जाती है तो फिर साधनो के चयन का प्रश्न कठिन नही रहता, कारण तब साध्य के प्रति एकाग्रता सपष्ट बन जाने से कौन सा साधन साध्य के अनुकूल होगा या कौनसा– प्रतिकूल इसका निर्णय लेना सरल हो जाता है। इस दृष्टि से साधनो के चयन मे श्रेष्ठ सहयोगी के बाद श्रेष्ठ ग्रथो का क्रम आता है कि जिनके अध्ययन-मनन से आत्म शुद्धि के साध्य को बल मिले।

आत्म शुद्धि की दिशा में प्रेरक ग्रंथो का अध्ययन

निपुण बुद्धि की पहली कसौटी यह मानी जानी चाहिये कि वह

अध्ययन-मनन के लिये ऐसे ग्रथो का चुनाव करे जिनसे आत्म शुद्धि की दिशा मे आगे बढने की प्रेरणा मिलती हो। योग्य सहयोगी सहज मे उपलब्ध हो जाय– यह सरल नही है, अत यदि योग्य सहयोगी का अभाव रहता है तो प्रेरक ग्रथो का चुनाव और अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाता है। फिर ग्रथो के अध्ययन से ही यह परिणाम निकलना चाहिये कि बुद्धि अपनी निपुणता के मार्ग से विचलित न हो तथा सभी साधनो को समन्वित रख कर आत्म शुद्धि के साध्य की तरफ गति करती रहे। इसलिये ये ग्रथ कैसे हो– यह देखना पहला सतर्क कार्य होना चाहिये।

प्रार्थना में कवि का सकेत भी यही है कि जीवन के तत्त्वो की उपलब्धि मे ग्रथो के अध्ययन से भी भारी सहायता मिल सकती है, अत श्रेष्ठ ग्रथो का अध्ययन किया जाय तथा उनसे आत्म शुद्धि की दिशा मे आगे बढने रहने की प्रेरणा प्राप्त की जाय। वैसे ग्रथो की दृष्टि से बहुतेरे ग्रथ, कई पुस्तके, सहायक दृष्टि से वैज्ञानिक विषयो की पुस्तके, उपन्यास तथा अन्यान्य विषयो से सम्बन्धित बहुतेरी पुस्तके ससार के सामने उपलब्ध है। जिस विषय के ग्रथ को आप उठायेगे और उसका जब आप अध्ययन करेगे तो आपके मानस की स्थिति उसके अनुरूप बनेगी– यह स्वाभाविक है। उसके अनुरूप बनने मे ग्रथ भी माध्यम बनते है और वे ग्रथ बुद्धि को अपनी ओर खीचते है।

इसलिये ज्ञानियो का इसमे सशोधन रहता है कि एक विकासोन्मुख आत्मा को तथा उसकी निपुण बुद्धि को उन्ही ग्रथो को चयन करना चाहिये तथा उन्ही ग्रथो का अध्ययन करना चाहिये जो आत्म शुद्धि के साध्य को प्राप्त कराने के आदर्श साधन के रूप मे यथायोग्य लगते हो। ससार मे प्राय करके अधिक ग्रथ दृश्य पदार्थो का विवेचन करने वाले होते है तथा रुचि को सासारिकता की तरफ मोडने वाले होते है अत आत्म शुद्धि के लिये आध्यात्मिक ग्रथो का ही विशेष रूप से अध्ययन एव मनन किया जाना चाहिये। मानवीय जीवन के व्यवहारिक क्षेत्र मे क्या कुछ होना चाहिये, किन-किन परिस्थितियो मे मानव का आचरण कैसा बनना चाहिये, व्यक्तिगत जीवन की व्यवस्था कैसी हो, राष्ट्रीय धरातल पर क्या उत्तरदायित्व वहन किया जाय, किस प्रकार के सहयोगी को ग्रहण करे, परिवार और समाज के बीच मे किन आदर्शो को प्रतिष्ठित करे, आर्थिक समस्याओ का हल किस नैतिकता से किया जाय, सामाजिक उलझनो को कैसे निपटावे आदि आदि विषयो के विभिन्न ग्रथ मानव-मस्तिष्क के सामने आते है। लेकिन यह एक पक्ष है। ये मनुष्य के बाहरी जीवन की सजावट है लेकिन भीतरी जीवन को इनमे छुआ नही जाता है, जबकि बाहरी जीवन को बनाने वाली समग्र शक्ति भी भीतरी जीवन से उभर कर आती है। अत जिस मूल

स्थान से यह शक्ति उभरती है, उसके विषय मे सबसे पहले ज्ञान होना चाहिये और उसके लिये सर्वप्रथम वैसे ग्रथो का ही अध्ययन किया जाना चाहिये । आत्म शुद्धि की प्रेरणा को केन्द्रित मान कर ही ग्रथो का अध्ययन हेतु चयन करे तथा मूल शक्ति को पहले पहिचाने।

श्रेष्ठ ग्रथ श्रेष्ठ सहयोगी का सबल देते है

बाह्य जीवन मुख्य रूप से भीतरी जीवन की प्रेरणा से चलता है अत शक्ति का मूल स्थान बाहर नही, भीतर होता है। इसीलिये भीतर को सवारना पहले जरूरी है। भीतर को सवार ले तो बाह्य स्वत ही सवर जायगा। इस दृष्टि से सहयोगी भी वैसा होना चाहिये जो भीतर को संवारने मे सहायता दे सके तथा ग्रथ भी वैसे होने चाहिये जिनसे आन्तरिकता को उद्बोधन मिले। ऐसा सहयोगी ही श्रेष्ठ सहयोगी कहलायगा तथा यदि ऐसा श्रेष्ठ सहयोगी उपलब्ध न हो तो ऐसे श्रेष्ठ ग्रथ श्रेष्ठ सहयोगी के तुल्य ही आत्म शुद्धि के साध्य को सम्बल प्रदान करते है।

बाह्य ज्ञान विज्ञान के ग्रथो का ही अवलोकन करे तो उन्ही विषयो को पकड पायेगे जो बाहरी दृश्यो का विश्लेषण करते है लेकिन उनकी कारणभूत शक्ति को नही पकड पायेगे। मानव इस कमी के कारण ही बाह्य पदार्थो तथा बाह्य वृत्तियो मे उलझ जाता है और उसी दिशा मे गति करने लगता है जिससे उसकी आन्तरिक शक्ति को जगाने की प्रेरणा शिथिल हो जाती है। वह अज्ञान दशा होती है तथा आत्मा की वर्तमान दुरावस्था का कारण यही अज्ञान दशा है। अज्ञान दशा मे बुद्धि का निपुण होना तो दूर रहा– बुद्धि भी दुर्बुद्धि का काला रूप ग्रहण कर लेती है। बुद्धि सुबुद्धि बने तथा निपुण बुद्धि बने– उसका पहला अभिप्राय ही यह है कि आत्मा की अज्ञान दशा मिटे तथा उसकी आन्तरिकता प्रबुद्ध बने। इसी कारण विशिष्ट ज्ञानियो का यह सशोधन है कि बाह्य दृश्यो मे ही रमण करते हुए जीवन को समाप्त कर देना– यह मानव जीवन के प्रति सबसे बडा अन्याय है।

यह मानव जीवन आन्तरिकता की गहराइयो को छूने के लिये है। यह जीवन अन्तरात्मा मे पैठकर आत्मिक शक्तियो को पाने के लिये है एव विषम स्थितियो का समानीकरण करके सदा के लिये सुखी बनने के लिये है। इस जीवन को किसी भी क्षण अशान्ति की गर्म हवा न लगे– इस हेतु श्रेष्ठ ग्रथो का मार्गदर्शन अत्यावश्यक है। श्रेष्ठ ग्रथो के अध्ययन से ही वह बुद्धि निपुणता की शक्ति प्राप्त होती है, जिससे इसी जीवन मे परिपूर्ण साधना की सुदृढ पृष्ठभूमि

बन जाय। चरम सीमा की साधना की दिशा मे आगे बढने के लिये उसके अनुरूप ग्रथो का वाचन किया जाय। कवि का सकेत है कि ये अनुरूप ग्रथ प्रधान रूप से आध्यात्मिक ग्रथ होते हैं, जिनके श्रवण, वाचन, अध्ययन, मनन तथा चिन्तन को उपादेय मानकर चले। जो ऐसा मानकर चलेगा, उसका मन-मस्तिष्क नय तत्त्व का परिशीलन करने मे समर्थ बन सकेगा। नयो का परिशीलन करने का तात्पर्य है कि वीतराग देवो ने प्रत्येक वस्तु-स्वरूप को समझने का सुन्दर मार्ग बताया है और उसी मार्ग के माध्यम से वस्तु स्वरूप को समझने का यत्न किया जाय। नय सग्रह नय आदि सात प्रकार के कहे गये है, जिनके माध्यम से वस्तु स्वरूप का विश्लेषण किया जाता है तो उस स्वरूप के सभी पक्षो का भव्य रीति से ज्ञान हो सकता है– यही नयवाद का परिशीलन है। आध्यात्मिकता के साथ नयो का परिशीलन होगा तो आत्मा, परमात्मा तथा आत्मिक गुणो के स्वरूप को हृदयग्राही रूप से समझा जा सकेगा।

इसलिये यदि सन्त समागम की दृष्टि से अच्छे विशिष्ट निपुण बुद्धि तथा दूरदृष्टि गुरु का सयोग नही जुटता हो तो अथवा उनके निर्देश से श्रेष्ठ आध्यात्मिक ग्रथो का सयोग प्रत्येक विकासशील व्यक्ति के लिये नितान्त आवश्यक है। ग्रथ का गुरु प्रत्येक क्षण अपने पास रह सकता है तथा जब भी यत्किचित् अवकाश मिले उसी समय ग्रथ का पठन और अध्ययन हो सकता है। श्रेष्ठ सहयोगी का विकल्प केवल श्रेष्ठ ग्रथ ही हो सकते है।

बुद्धि निपुणता के लिये स्वाध्याय की उपयोगिता

पग-पग पर जीवन की ग्रंथियॉ मानव को उलझाना चाहती है– उनकी उलझन से निकलने के लिये तथा उनकी उलझन से बचने के लिये बुद्धि की निपुणता ही श्रेष्ठ सहायता कर सकती है तथा इस हेतु स्वाध्याय की उपयोगिता निर्विवाद सिद्ध है। जीवन की ग्रथियो को सुलझाने का मार्ग बुद्धि स्वाध्याय मे ही ढूढ सकती है। इस अन्तरात्मा का कितना विराट् स्वरूप रहा हुआ है, आन्तरिक जागरण के क्या-क्या साधन है तथा आत्मानुभूति का कैसा आनन्द होता है– इन सब बातो का विज्ञान स्वाध्याय से ही सभव बनता है। स्वय अध्ययन करे, स्वय चिन्तन करे तथा स्वय निर्णय ले– ऐसी स्वतत्र और विशुद्ध चेतना का निर्माण आध्यात्मिक ग्रथो के अध्ययन से ही हो सकता है।

इसलिये प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति को साध्य सन्तुष्टि के साथ आध्यात्मिक जीवन-विकास के निमित्तभूत आध्यात्मिक ग्रथो का श्रवण, अध्ययन तथा परिशीलन अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर करना चाहिये। इसमे यदि आप एक घटे भर भी

लगे रहते है तो इसके द्वारा बाकी के तेबीस घटो की आध्यात्मिक खुराक आपको मिल सकती है। स्वाध्याय से मूल को यदि आप सुरक्षित कर लेते है– आन्तरिक शक्ति को सतत जागृत बनाये रख सकते है तो टहनियॉ तथा पत्तियॉ तो अपने आप सुरक्षित बनकर हरी-भरी रह सकेगी। लेकिन केवल टहनियो और पत्तियो को सुधार दिया याने कि बाह्य जीवन के सशोधन पर ही ध्यान दिया तो वह केवल बाह्य सशोधन ज्यादा समय तक टिक नही सकेगा क्योकि उसका मूल तो आन्तरिक जीवन होता है। आन्तरिक जीवन की वास्तविक विकास इस दृष्टि से मूलत अनिवार्य है।

जीवन साधना की दृष्टि से आन्तरिक तत्त्वो को छूने वाले तथा आध्यात्मिक भावो को उत्प्रेरणा देने वाले ग्रथो की स्वाध्याय दिनचर्या का नियम बन जाना चाहिये। यद्यपि वे अक्षर है तथा अक्षर अपने आप बोलते नही है तथापि आन्तरिक शक्ति के चिन्तन मे वे अक्षर उतरेगे और निपुण बुद्धि से सबद्ध बन जायेगे तो वे ही अक्षर अन्त करण मे सत् चित् एव आनन्द स्वरूप आत्मा की सर्वोच्च अवस्था को प्रकाशमान बना देगे।

आज की युवा पीढी अपने स्वस्थ विकास के लिये चिन्तित है। उसकी प्रतिभा विकसित हो रही है, उसके अन्दर उमग है, उत्साह है तथा वे युवक अपनी जिन्दगी मे कुछ कर गुजरना चाहते है। उनकी अपनी जिज्ञासाएँ है, परन्तु इसके साथ ही उनको सही मार्गदर्शन की आवश्यकता भी है। उनको श्रेष्ठ सहयोगी मिले तथा उनको श्रेष्ठ ग्रथ उपलब्ध कराये जाय, फिर उनको स्वाध्याय की ओर मोडा जाय ताकि वे ही स्वय अध्ययन और चिन्तन करके अपने विकास की दिशा का निर्णय करे। यदि युवा पीढी अपने स्वस्थ विकास का– अपने आन्तरिक सशोधन का आध्यात्मिक मार्ग पकड लेती है तो फिर सारे राष्ट्र का तथा राष्ट्र के भविष्य का श्रेष्ठ निर्माण करने मे कोई बाधा नही रहेगी। इसलिये श्रेष्ठ एव निपुण बुद्धि के विकास के लिये स्वाध्याय की नियमित वृत्ति सभी को बनानी चाहिये तथा युवा पीढी को स्वाध्याय के प्रति विशेष रूप से आकर्षित किया जाना चाहिये।

निपुण बुद्धि का विकास सभी चाहते है परन्तु सही माध्यम नही पकडते है

सभवत यह तो सभी चाहते होगे कि उनकी बुद्धि का विकास हो तथा वह विकास निपुणता–युक्त हो, परन्तु उनमे से बहुत ही कम ऐसे व्यक्ति मिलेगे जो उसका सही माध्यम पकड पाते हो। यदि वस्तुत निपुण बुद्धि का विकास करना है तथा आत्म शुद्धि की और आगे बढना है तो श्रेष्ठ ग्रथो की प्रतिदिन

कम से कम एक घटे के लिये स्वाध्याय का कार्यक्रम रखना चाहिये तथा उसमे अधिक से अधिक युवक उपस्थित रहे– ऐसी प्रेरणा देनी चाहिये। जो युवक भावी समाज के विधाता के रूप मे चमकने वाले है, वे यदि अपनी आन्तरिक शक्ति का सचय करेंगे, अनुशासनबद्ध होकर अपनी गतिविधियॉ चलायेगे तथा अधिक से अधिक उत्तरदायित्व लेकर उसका योग्यतापूर्वक निर्वहन करना सीखेगे तो उन के मन मस्तिष्क को भी उन्नति का सम्बल मिलेगा एवं समाज के भविष्य को भी उत्साहवर्धक सम्बल प्राप्त होगा। जो नई उमग के साथ उभरना चाहते हैं, उनको सही मार्ग पर आगे बढने के अवसर मिलने ही चाहिये। सही माध्यम उपलब्ध कराने से ही निपुण बुद्धि का विकास सम्पादित किया जा सकेगा।

वर्तमान मे युवको का बहुतेरा समय सिर्फ बाह्य जीवन की समस्याओ को हल करने मे ही निकल जाता है जिनमे आर्थिक आदि सभी समस्याओ का समावेश हो जाता है, उसी मे से उनको यथोचित समय धार्मिक एव आध्यात्मिक योगदान के लिये निकालना चाहिये। युवको मे झूठी अहवृत्ति न बढे, वे विनम्र बने तथा उनमे सेवाभावना जागृत हो– इसके लिये सही उपाय सोचे जाने चाहिये, क्योकि प्रलोभन या विषमता की स्थिति रहे तो गुणशीलता के प्रति सच्ची लगन नही जगेगी। अमुक चीज मिले– अमुक पद मिले तभी काम करू– ऐसी लालसा उभरेगी तो ऐसी लालसा आत्म शुद्धि के पवित्र कार्य को भी व्यापार एव सौदेबाजी मे बदल देती है। आत्मशुद्धि तथा प्रलोभन वृत्ति– ये दोनो साथ-साथ नही चल सकती है।

विनोबा जी बहुत बडे विद्वान हैं। उन्होने अपनी शिक्षा प्राप्त करके एक दिन जितनी डिग्रियो के प्रमाण-पत्र उनके पास थे– उन सबको उन्होने जला दिया। उनकी माता ने पूछा– यह क्या किया तो उन्होने उत्तर दिया ये सब सर्टिफिकेट मेरे जीवन के लिये बाधक है। अब मै स्वय अपनी शक्ति से योग्यता प्राप्त करूगा। यह युवको के लिये एक प्रेरणा का उदाहरण हो सकता है कि बुद्धि के स्वस्थ विकास के लिये आत्म शुद्धि एव आत्म शक्ति की प्राप्ति आवश्यक है।

बुद्धि के सदुपयोग से ही सभी क्षेत्रों में उन्नति संभव

निपुण बुद्धि का विकास किया जाय तथा उसका सर्वत्र सदुपयोग किया जाय, तभी न सिर्फ आध्यात्मिक क्षेत्र मे बल्कि बाह्य जीवन के सभी क्षेत्रो मे भी उन्नति सभव हो सकती है। बुद्धि का सदुपयोग होता है, तभी जीवन विकास की

कला हाथ मे आती है। इस कला को प्राप्त करने की आकाक्षा प्रत्येक मानव की होनी चाहिये। आप समझले कि यह प्रेरणा तो युवको मे ही जागृत हो सकेगी, हम तो बुजुर्ग हो गये है। किन्तु मै पूछता हूँ कि आप बूढे कैसे हो गये ? अब तक आपने क्या कर लिया ? इस जिन्दगी को विषय कषायो मे डालकर तुष्टि मान ली लेकिन आपकी जिन्दगी मे नैतिक तरुणाई यदि नही आई तो बुढापा क्यो आ गया ? जब तक जीवन मे वास्तविक रूप से चारित्रय बल नही पैदा होता है तब तक अपने को तरुण समझते हुए साध्य की ओर लगे रहिये।

आज सभी क्षेत्रो मे जो विषमता व्याप्त हो रही है, उसके मूल मे आध्यात्मिक साधना का ही अभाव है क्योकि बिना आध्यात्मिक साधना के बुद्धि का विकास और सदुपयोग होता नही तथा उसके बिना किसी भी क्षेत्र मे उन्नति सभव होती नही है। भौतिक सम्पत्ति को प्राप्त करने के पीछे आज मनुष्य के मन मे जो पागलपन जगा हुआ है, वही बुद्धि को मलिन तथा विश्रृखल बनाये हुए है। और इस विश्रृखल बुद्धि के ही दुष्परिणाम है कि सामाजिक क्षेत्र मे कई कुरीतियॉ बराबर चल रही है तथा कई कुरीतियॉ पनपती भी जा रही है। दहेज प्रथा को ही लीजिये जो भूत की तरह सिर पर सवार हो रही है। धन की लालसा आज इतनी बढ गई है कि जितना पैसा बटोर ले उतना ही अच्छा है। कमाई के जरिये बढाते रहते है। ब्याज से या दूसरे निमित्त से पैसा इकट्ठा करने की लगी रहती है। लडका बडा हो गया और पढ लिख गया तो मानो वह भी पारस पत्थर बन गया है। पहले के जमाने मे लडकियो के पैसे लेते थे तो आज दहेज के रूप मे लडको के पैसे लेने लगे है। क्या मानव जीवन बिकने के लिये है ? प्राचीनकाल मे महाराज हरिश्चन्द्र के जमाने मे मनुष्य बिकता था। घास का पूला सिर पर रखकर स्वय हरिश्चन्द्र बिके थे। बाद मे यही प्रथा दास प्रथा के नाम से चली और उसे मानवता विरोधी प्रथा मानकर समाप्त की। अब यह लडको का बिकना क्या उसी प्रथा के समकक्ष नही है ? घास का पूला सिर पर नही रखा जाता, लेकिन तिलक और दहेज के जरिये यह नीलामी का नया तरीका ही तो है। यह तरीका छिपा हुआ है तथा इस के साथ झूठी शान जोड दी गई है। हालत यह हो गई है कि किसी से पैसा ज्यादा मिल जाय तो अपने गुणवान् पुत्र को कुलक्षणी कन्या से जोड लेने मे भी माता पिता को हिचकिचाहट नही होती है। इस प्रकार चादी के टुकडो के लिये कितनी कन्याओ को बरबादी की ओर धकेला जा रहा है तथा कितने गरीब माता पिता कर्जो के बोझ के नीचे दबाये जा रहे है– यह सारी स्थिति अतीव चिन्तनीय है।

यह बुद्धि का विपर्यास है। लेकिन अब भी सद्बुद्धि जागृत होनी चाहिये कि इस प्रथा को अपने ही विवेक से समाप्त कर दे। यह न हो कि सरकार का

डडा पडे और फिर विवश होकर यह कुप्रथा छोडनी पडे। लेकिन बुद्धि जब तक दुर्बुद्धि बनी रहती है तब तक जागृति होनी मुश्किल दिखाई देती है। यहाँ तो सरकार कानून बना दे तब भी उसमे गालियाँ निकालने की चाले सोची जायगी, लेकिन ध्यान कि यह पतन का रास्ता है। विवेक से ही बुराइयो को छोड सके और स्वेच्छा से त्याग लेले– वह बुद्धिमता का रास्ता होगा। बुद्धि का सदुपयोग करने का अभ्यास डालिये ताकि सभी क्षेत्रो मे उन्नति साधने के सुअवसर उत्पन्न हो जाये।

सद्बुद्धि जागृत करे ताकि सर्वत्र नैतिकता पनपे

बुराइयाँ किसी एक क्षेत्र मे ही नही फैली हुई है, बाह्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे वे बढ रही है। इस का दुष्परिणाम यह हो रहा है कि कही भी नैतिकता नही, ईमानदारी नही, सच्चरित्रता नही। पैसे के लिये आदमी कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। व्यापारी मे ईमानदारी घट रही है तो अफसर मे रिश्वतखोरी बढ रही है। स्वर्गीय आचार्य श्री जब सोजत मे विराज रहे थे, तब एक गरीब व्यापारी ने किसी से किसी चीज के बारह आनो की बजाय साढे बारह आने ले लिये। यह बात कन्ट्रोल के वक्त की है। जब अफसर को मालूम हुआ तो उसको हिरासत मे रखा तथा मुकदमा चला कर उस पर पचास रुपये का दड हुआ। तब आचार्य श्री ने सोजत निवासियो को पूछा कि इन अफसर की नौकरी करने से पहले कैसी आर्थिक स्थिति थी ? लोगो ने बताया कि तब एक टाईम खाने के भी लाले पडते थे और आज थोडे से दिनो की सर्विस मे बगला बन गया है, कार आ गई है और पैसा अनाप शनाप बढ गया है। आचार्यश्री ने आश्चर्य व्यक्त किया। एक बडा चोर साहूकार और वह मामूली से चोर को बडा दड दे रहा है– यह नैतिकता का कैसा स्तर हो गया है ?

अगर इस अनैतिकता को समाप्त करनी है तथा सर्वत्र नैतिकता पनपानी है तो सद्बुद्धि को जागृत बनाने के सिवाय अन्य कोई मार्ग नही है। यह नही है कि समाज मे सद्बुद्धि कही नही है। कई नैतिक पुरुष भी है तथा सद्बुद्धि का प्रयोग करके क्लेश मिटाने की चेष्टा भी करते है। एक सत्य घटना याद आ गई है। एक स्थल पर लक्ष्मीचन्द जी मुरादिया नाम के बडे व्यापारी थे जो अपना सारा व्यापार पूर्ण नैतिकता के साथ ही चलाते थे। उन्ही के मोहल्ले मे एक अन्य परिवार रहता था जिसमे दो भाई थे। उनके बीच मे पैसे को लेकर क्लेश पैदा हुआ और वे बटवारे पर आ गये। सब चीजो का बटवारा हो गया लेकिन एक

सुन्दर अगूठी के लिये दोनो अड गये। प्रत्येक भाई अगूठी ही लेना चाहता था, कोई भी कीमत लेने को तैयार नही हुआ। उस पर उन दोनो भाइयो को बीच मे भयकर क्लेश बढ गया। मुरादियाजी को यह अच्छा नही लगा। उन्होने वैसी की वैसी अगूठी अपने पास से बनवाई। उस अगूठी को लेकर वे बडे भाई के पास पहुँचे और पूछा क्या आप कीमत नही लेगे ? अगूठी ही लेगे ? उसने कहा– अगूठी ही लूगा। वह अगूठी उसे देकर बोले– यह अगूठी लो लेकिन कही बाहर पहिन कर मत जाना, नही तो छोटा भाई क्लेश करेगा। वह मान गया। फिर छोटे भाई को भी यही पूछा और उसे उनके घर की अगूठी ही दे दी और बाहर कही पहिनने को मना कर दिया। उनके घर की अगूठी पहले समझाईश नही बैठने के कारण उन्होने अपने पास रखली थी।

लम्बे अर्से बाद दोनो भाइयो ने अगूठियॉ पहनी और कही एक जगह दोनो मिल गये। दोनो को बडा आश्चर्य हुआ कि एक की बजाय दो अगूठियॉ कहॉ से आ गई ? तब पता चला कि यह दोनो भाइयो के क्लेश को मिटाने के लिये मुरादिया जी ने त्याग किया था। ऐसे भी नैतिक पुरुष है जो त्याग करते है लेकिन उसका डका नही पीटते। यह सद्‌बुद्धि की जागृति का रूपक था।

मै अमरावती से रतलाम पहुँचा, वहॉ एक व्याख्यान मे दहेज की कुप्रथा मिटाने का मैने उद्‌बोधन दिया तो गेदालाल जी खाबिया ने दहेज लेने का त्याग कर लिया जबकि उनके लडके को अस्सी हजार का दहेज देने को लोग तैयार थे। इस रूप मे सद्‌बुद्धि भी लोगो मे है । इसको व्यापक रूप से जगाने के विशाल प्रयासो की अवश्य आवश्यकता है।

निपुण बुद्धि के जागरण मे युवा पीढी आगे आवे

निपुण बुद्धि के जागरण मे आज की युवा पीढी आगे आवे और यह सोच ले कि हमको और कुछ नही चाहिये– सिर्फ चाहिये तो सेवा चाहिये, मानव जाति का सुधार चाहिये, आत्मिक उपलब्धि चाहिये,। इसके लिये वह स्वय आध्यात्मिक जीवन की साधना अपना कर अपने जीवन का निर्माण करे– अपनी बुद्धि को निपुण बनावे, समाज और परिवार को सुधारे तथा राष्ट्र के लिये आदर्श उपस्थित करे।

युवा पीढी इस गहन उत्तरदायित्व को अपने कधो पर ले ले तो भविष्य सुन्दर बनाया जा सकता है।

नोखा

१०.१०.७६

❑❑❑

4

दर्शन की सच्ची अभिलाषा

अभिनन्दन जिन दर्शन तरसिये
दर्शन दुर्लभ देव।
मत मत भेदे रे जो जई पूछिये
सह थापे अहमेव।

यह अभिनन्दन प्रभु की प्रार्थना है। प्रभु की प्रार्थना करते हुए जब अन्तरात्मा में परमात्म स्वरूप को देखने की प्रबल जिज्ञासा जागृत होती है, तब दर्शन की प्यास उग्र बनती है। वह दर्शन की प्यास से लालायित हो उठता है कि किस प्रकार वह निराकार को अपने ही भीतर देखे तथा उसके आनन्दमय स्वरूप की झलक प्राप्त करे।

दर्शन की जब सच्ची अभिलाषा दृढीभूत बनती है तो वह दर्शनार्थी विह्वल हो उठता है और श्रद्धा एव विनम्रता से विगलित हो जाता है। जब अभिलाषा अन्तःकरण से उठकर सच्ची हो तथा वह सच्ची अभिलाषा भी अलौकिक स्वरूप के दर्शन की हो तो उस समय की उत्सुकता निराली ही होती है।

दर्शन क्या, और दर्शन कैसे ?

दर्शन का अर्थ देखने से है। देखना दो तरह से होता है। एक देखना तो इन बाहर की चर्म-चक्षुओ से याने कि चमडे की आखो से और दूसरा देखना ज्ञान चक्षुओ से याने कि अन्दर की आंखो से। इन चर्म-चक्षुओ से जगत् के स्थूल पदार्थ ही दृष्टि में आते है अत इन बाह्य नेत्रो से तो इन्ही पदार्थो का दर्शन

किया जा सकता है। परन्तु सम्यक् ज्ञान एव सदाशयी आन्तरिकता की दिव्य शक्ति जब विकसित होती है तो उस शक्ति के माध्यम से दृश्य एव अदृश्य– स्थूल तथा सूक्ष्म सभी पदार्थ और तत्त्व अपने यथार्थ स्वरूप के साथ दृष्टिगत बन जाते है। उस दिव्य दृष्टि के सामने दूरी का भेद भी समाप्त हो जाता है। बहुत दूर रहने वाले तत्त्व भी जैसे समीप मे ही हो उस रूप मे दिखाई देते है, बल्कि दिव्य दृष्टि के सम्पूर्ण विकास के पश्चात् तो समग्र वस्तु स्वरूप वाला सारा ससार हाथ पर रखे आवले की तरह अतीव सुस्पष्ट रूप मे दिखाई देता है।

यह दिव्य दृष्टि, यह समीपता की अनुभूति एव यह आन्तरिक ज्ञानमयता इसी आत्मा से उद्भूत होती है। इन शक्तियो के सृजन करने का सामर्थ्य इसी आत्मा मे है। यही आत्म स्वरूप जब विशुद्धता एव विराटता की अवस्था को प्राप्त होता जाता है तो इसी स्वरूप मे से ये शक्तियॉ प्रस्फुटित होती है। इसलिये कवि ने अभिनन्दन भगवान् की स्तुति करते हुए सकेत दिया है कि हे भगवान्, मेरी आत्मा आप के दर्शन की प्यासी हो रही है– दर्शन के लिये तरस रही है।'तरस' शब्द का प्रयोग वही किया जाता है, जहॉ आध्यात्मिक तिलमिलाहट हो। दर्शन के लिये जब ऐसी तिलमिलाहट पैदा हो जाती है, तभी परमात्म स्वरूप के भीतर ही भीतर दर्शन होते है। यह स्वरूप और किसी का नही, अपनी ही आत्मा का पूर्ण विकसित स्वरूप होता है। दर्शन के तिलमिलाहट से दर्शन का पुरुषार्थ प्रारम्भ होता है और दर्शन के लिये जो आन्तरिक आकुलता होती है, वह इस पुरुषार्थ को किसी भी अवस्था मे डिगने नही देती है तथा लक्ष्य तक पहुॅचाकर ही छोडती है। ऐसा होता है दर्शन का भीतरी आनन्द, जो सर्वत्र व्याप्त होकर भीतर बाहर चारो ओर आनन्द ही आनन्द की वर्षा कर देता है।

दरस की तरस
और सेठ सुदर्शन का साहस

ग्रीष्म ऋतु मे जिसे तेज प्यास लगी हो और उसका कठ सूख रहा हो उस वक्त उस प्यासे व्यक्ति से कोई कहे– अरे भाई, पानी क्या माग रहा है ? ले तू घी पीले। तो क्या वह प्यासा व्यक्ति घी पीना पसन्द करेगा ? उससे कहा जाय कि पानी की कीमत लगेगी– एक लोटा भर पानी के एक हजार रुपये। यदि अन्यत्र पानी की उपलब्धि नही है तो वह हजार रुपये देकर भी एक लोटा भर पानी ही पीना चाहेगा। पानी की प्यास जिस प्रकार आकुल-व्याकुल बना

देती है, उससे कई गुनी अधिक प्रभु के दर्शन के लिये जगी हुई प्यास याने 'दरस की तरस' आत्मार्थी व्यक्ति को विह्वल कर देती है। वह आत्मा अन्य सब कुछ भूल जाती है और प्रभु दर्शन की प्यासी बन जाती है।

भगवान् महावीर जिस समय राजगृही नगरी के बाहर पधारे, उस समय किसी नगरवासी का यह साहस नही हुआ कि वह अपने घर से बाहर निकल कर भगवान् के दर्शन करने के लिये जावे। कारण, उस समय अर्जुनमाली का उपद्रव चल रहा था। यक्ष अर्जुनमाली की काया मे प्रविष्ठ हो गया था और उससे उत्तेजित बना वह हाथ मे मुद्गर लेकर नगर के चारो ओर घूम रहा था और प्रतिदिन छ. पुरुष व एक नारी की हत्या कर रहा था। उसके भय से कोई नगरवासी अपने घर से भी बाहर निकलने की हिम्मत नही कर पा रहा था।

किन्तु भगवान् के आगमन का समाचार जब सेठ सुदर्शन ने सुना तो उनके मन मे 'दरस की तरस' जाग उठी। वह इतनी उग्र बन गई कि वे दर्शन एव वाणी श्रवण हेतु भगवान् के समीप जाने के लिये तैयार हो गये। परिवार वाले अर्जुनमाली के भय से उन्हे रोकने लगे लेकिन दर्शन की प्यास ने उनके सारे भय को भगा दिया और सुदर्शन निर्भय होकर अपने स्थान से एकदम अकेले निकल पडे।

सुदर्शन सेठ नगर के बाहर निकले ही थे कि अर्जुनमाली अपना लौह मुद्गर घुमाता हुआ उन्ही की तरफ दौडा। सकट सामने आ रहा था लेकिन सेठ के मन मे यह विचार नही आया कि वे भगवान् के दर्शन करने क्यो निकले ? उनका मन निर्द्वन्द और निर्भय था— पश्चाताप का वहॉ प्रश्न ही क्या ? उनके मन का साहस तो कई गुना बढ गया कि यह उनकी परीक्षा है— उनकी दर्शन की प्यास की परीक्षा है। इस परीक्षा मे उन्हे सफल होना है और भगवान् के समीप मे जाकर उनके दर्शन करने है, उनकी अमृतवाणी श्रवण करनी है। अर्जुनमाली का रौद्र रूप सामने देख कर भी उनके हार्दिक हर्षोल्लास मे कोई कमी नही आई। वे वही निश्चिन्त ध्यानमग्न खडे हो गये।

दर्शन करने की सुदर्शन सेठ की उत्कट भावना थी— वे मृत्यु भय से भी क्या डरते ? डरते और घबराते तो वे है, जिनकी भावना कच्ची होती है। ऐसे लोग ऐसे समय पर पश्चात्ताप करने लग जाते है कि दर्शन के पीछे उन्होने खतरा क्यो मोल लिया ? ऐसी विचारणा जागृति के अभाव मे ही होती है। किन्तु दर्शन की अभिलाषा जिनकी सच्ची होती है, उनका उद्देश्य परिपूर्ण भी बनता है— कोई भी सकट उनके अदम्य साहस के सामने ठहरता नही है। सेठ सुदर्शन के ऊपर आये हुए सकट के बादल भी छट गये। उस प्रभु भक्त पर वार करने

का यक्ष का प्रयास टूट गया और वह टूटा तो अर्जुनमाली की काया छोड कर भाग गया। उस परवश अर्जुनमाली को सेठ ने प्रतिबोध दिया— उसके हृदय मे भक्ति की भावना जगाई और वे उसको भी अपने साथ मे लेकर प्रभु के चरणो मे पहुँच गये। यह सेठ सुदर्शन के सत्साहस का ही सुफल था कि अर्जुनमाली ने अपने आपको भगवान् के समर्पित कर दिया तथा उसी जन्म मे अपना आत्म कल्याण साध लिया।

सेठ सुदर्शन की दर्शन की प्यास ऐसी अलौकिक थी कि उसके निमित्त से भय ही निर्भय बन गया— हत्यारा अर्जुनमाली प्राणियो का प्रतिपालक हो गया। सेठ सुदर्शन की दर्शन भावना के पीछे कितनी विपत्ति थी जिसकी उन्होने कोई परवाह नही की। जीवन की आहुति देकर भी उन्होने दर्शन की भावना पूर्ण करनी चाही तो उस सत्साहस के कारण एक पतित आत्मा को नया जीवन मिल गया।

दर्शन जड के करेगे या चैतन्य के करना चाहेगे ?

सेठ सुदर्शन के समान ही कोई भी साहसी भक्त अभिनन्दन भगवान् के चरणो मे पहुँच सकता है। उसमे होनी चाहिये दर्शन की तीव्रता—दर्शन की विह्वल बना देने वाली प्यास। ऐसी प्यास आत्मा की आन्तरिकता मे ही जागती है और अन्तर्दृष्टि ही उस प्यास की तृप्ति का मार्ग खोजती है। जितनी 'दरस की तरस' जागरूक बनती है, उतनी ही उग्रता से आत्मवृत्तियॉ चैतन्य स्वरूप की तरफ गमन करती हैं। वे तब चैतन्य की शक्ति को पहिचानने लगती है और उसी का अनुसरण करने लगती है।

यह आत्मा चैतन्य स्वरूप होती है। वह जड से विलग है। जड के दर्शन करते-करते तो यह आत्मा अनादिकाल से ससार के भव चक्र मे भ्रमण कर रही है और कष्ट भुगत रही है। जितने दृश्य पदार्थ है, वे जड रूप है एव आत्मा विहीन यह शरीर भी जडभूत ही होता है। फिर भी यह आत्मा ससार के दृश्य पदार्थो के प्रति— अपने शरीर के प्रति भयकर ममत्व लेकर चल रही है। इन्ही पदार्थो की प्राप्ति की तथा अपनी शारीरिक सुख सुविधा की ही वह कामना करती है, लेकिन निज के ही चैतन्य स्वरूप को पहिचानने की तरफ उन्मुख नही बनती है। यही इसकी सुप्तावस्था है।

आप भी जड के दर्शन करेगे या चैतन्य के दर्शन करना चाहेगे ? जड के

दर्शन तो करते ही आ रहे है और उसके दुष्परिणाम आपके सामने है। अब तो चैतन्य के दर्शन करने की जिज्ञासा जगाइये। यदि ऐसी जिज्ञासा जगायेगे और दर्शन की प्यास तीव्र बनेगी तो आत्मा और परमात्मा के अवश्य ही दर्शन कर सकेगे। उत्कट भावना हो तो उसको अपने लक्ष्य तक पहुँचने मे कोई भी बाधा रोक नही सकती है। क्या मृत्यु का भय भी सेठ सुदर्शन को भगवान् के दर्शनार्थ जाने से रोक सका ? आवश्यकता इस बात की है कि दर्शन की सच्ची अभिलाषा जागृत हो जानी चाहिये।

कई भाई सोचते है कि आजकल पचम काल चल रहा है और इस पचम काल मे आत्मा और परमात्मा रूप चैतन्य के दर्शन कहाँ रखे है ? ऐसा सोचना अपने आप को कमजोर बनाना है– अपने आप के जीवन को मद बनाकर जीवनी शक्ति को दबाना है। किसी व्यक्ति को मद भावना नहीं लानी चाहिये। सदा उत्साह और उमग की तरग व्याप्त रहे और यह विचार रहे कि इस जीवन मे संजीवनी शक्ति भरी जाय। जितनी कर्मठता पैदा की जा सकती है, उतनी पैदा की जाय। आत्मविकास के लिये जो कुछ किया जा सकता है, वह पूरी निष्ठा के साथ किया जाय। जितना प्रभु के समीप पहुँचा जा सकता है तथा आत्म स्वरूप के दर्शन किये जा सकते है, उतना इसके लिये यत्नशील बना जाय। यह मान लेना चाहिये कि प्रभु के दर्शन हमारे ही भीतर है। अभिनन्दन भगवान् के तुल्य हमारी आत्मा भीतर विराजमान है। चैतन्य स्वरूप के जो दर्शन है, वे ही भगवान् के दर्शन है।

आत्म दर्शन की भावना बलवती बन जाय

हम अपनी ही आत्मा को जाने, उसको उस के मूल स्वरूप से पहिचाने तथा भीतर गहरे उतर कर आत्म-दर्शन करे– यह हमारी समग्र कर्मठता का प्रेरक लक्ष्य बन जाना चाहिये। यह ऐसा कार्य है जिसके लिये कही बाहर भागने दौडने की आवश्यकता नही है, न ही इधर-उधर कष्ट करना है। इसके लिये तो आत्म दर्शन की भावना ही बलवती बन जानी चाहिये।

अन्त करण मे आत्म-दर्शन की तीव्रता जाग उठे। इतनी तीव्रता कि प्राण जाय पर प्रण नही जाय। जो जीवन-उत्थान का सकल्प लिया जावे, उस पर सुदेव, सुगुरु, सुधर्म मे पूर्ण श्रद्धान रखकर अटल-अडोल रहा जाय। भयकर से भयकर विपत्ति आ जावे– कोई शरीर की त्वचा भी उतारने लगे, शरीर के

टुकडे-टुकडे भी करने लगे तब भी सकल्प के अनुसरण मे दुर्बलता नही आवे और वीतराग मे आस्था तथा आत्मा-परमात्मा मे निष्ठा दृढतर बनती जावे। इस प्रकार की दृढता मानव जीवन मे व्याप्त होती है तब वह मानव इस जीवन मे भी निहाल हो जाता है तो उसका अगला जीवन भी पवित्र बन जाता है। ऐसी भावना प्रतिदिन जागृत की जाय– बलवती बनाई जाय। सन्त यदि भावना की पुष्टि करने वाले मौजूद है तो उनसे सम्पर्क साधा जाय एवं उनसे इस भावना की पुष्टि कराई जाय। प्रतिदिन सिचित की जाने वाली भावना दृढीभूत भी होती है तो फलवती भी बनती है। कदाचित् सन्त नही हो तो कम से कम एक घटा भर समय निकाल कर इस तात्त्विक भावना को हृदय में रमाते रहना चाहिये।

बच्चा जब जन्मता है तो माता उसे बडा करने के लिये दूध पिलाती है। कितने दिनो तक दूध पिलाती है ? क्या दो चार दिनो तक ? और माता ऐसी बेपरवाही करे तो क्या बच्चा जीवित रहेगा ? जन्मते ही ज्यो-ज्यो बच्चा रोता है, माता समझ जाती है कि यह दूध के लिये तिलमिला रहा है। वह तत्क्षण दूध पिलाती है और थोडा सा समय बीतता है कि वह फिर फिर दूध पिलाती है। मै समझता हूँ कि एक ही दिन मे कई वक्त दूध पिलाती है। इसलिये पिलाती है कि बच्चा अभी कोमल है और इस कोमल बच्चे को जीवित रखने तथा हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिये दूध पिलाना नितान्त आवश्यक है। माताएँ इतनी जागरूक रहती है, तभी बच्चे का लालन-पालन सुन्दर रीति से हो सकता है। वैसे ही आप आत्म-दर्शन रूपी बच्चे को यदि बलवान बनाना चाहते है तो भावना की खुराक हर समय देते रहिये। यह मत सोचिये कि यह खुराक कितनी वक्त देवे ? जैसे माता बच्चे को कई वक्त खुराक देती है, वैसे ही अन्त करण मे आत्म-दर्शन के प्रति तीव्रता बनाने के लिये बार-बार परमात्मा की प्रार्थना कीजिये, ध्यान और चिन्तन मे डूबिये तथा उस तीव्रता को वाचा मे लाकर पुष्ट बनाइये। हर वक्त यह प्रक्रिया न भी चला सके तो दिन मे तीन चार बार और कम से कम एक बार तो ऐसा क्रम अवश्य चलावे जिससे बच्चा जीवित तो रह सके। बाकी प्रक्रिया को जितनी अधिक चलायेगे, आत्म-दर्शन की स्थिति उतनी ही जल्दी आवेगी।

ससार-दर्शन बहुत हो गया, उससे अलग हटिये !

आत्म दर्शन तब तक नही होगा, जब तक ससार दर्शन से अलग नही हटेगे। इस आत्मा के लिये ससार दर्शन तो बहुत हो गया है– अनादिकाल से

मोहमाया की लालसाएँ प्रबल वेग से चलती आ रही है। यह शरीर, यह परिवार, यह धन ऐश्वर्य यह पद विलास, यह सत्ता भोग अब तक इस आत्मा का आकर्षण केन्द्र बनकर उसे व्यामोहित बनाता रहा है। इन लालसाओ ने गरीब अमीर का भेद बनाया, पैसे को सिर पर चढाया तथा विषय-कषाय की ज्वालाएँ सुलगाई। अच्छे भले दीखने वाले आदमी भी पूंजी के लोभ मे पड जाते है। चाहे कोई अनाथ है और उसके पास से कोई वस्तु लेनी है तो ठग कर लेने की कोशिश करेगे। कोई विधवा है, वज्रपात से दबी हुई है और वह विश्वास करती है कि अमुक व्यक्ति उसकी सहायता करेगा, लेकिन वही व्यक्ति सोचता है कि अच्छा हुआ, इसकी सहायता के बहाने से इस की पूजी हडपली जाय– इसके बाल बच्चो को भुलावे मे डालकर इसके व्यापार पर कब्जा कर लिया जाय। यह सोचकर वह मायावी ढंग से लेन देन की वस्तुओ को दबा लेता है।

जानते है, ऐसी कुत्सित वृत्तियाँ क्यो पैदा होती है तथा क्यो आत्मा ऐसे दुराचरण मे प्रवृत्ति करती है ? यह आत्म-दर्शन की भावना एव पुष्टि के अभाव के कारण होता है। संसार-दर्शन मे ही रमे रहने वाले व्यक्ति मानवता को भी खो देते है और परिग्रह एव परिग्रह की लालसाओ मे अपने को कुटिलतापूर्वक उलझा देते है। ससार दर्शन जड दर्शन है और जड को देखकर व्यक्ति का मानस भी जडीभूत बन जाता है। आत्मिक खुराक के अभाव मे वह उपकार करने की बजाय अपकार कर बैठता है– चाहे सारी जिन्दगी भर उसी से पला पोषा हो, उसी की मदद से वह काम धधे मे लगा हो, वही मालिक अचानक मर जाय तो उसी के घर की वह भक्षक बनने के लिये तैयार हो जाता है। यह कृतघ्नता की जघन्य अवस्था होती है। मानवता का ऐसा पतन इसी कारण सभव होता है कि ससार-दर्शन को ही इस जीवन मे प्रमुखता देकर गति की जाती है एव चैतन्य को भुला दिया जाता है। कोई चेतना शून्य बन जाय तो उसका प्रत्येक कार्य अंधा ही तो होगा। इसलिये संसार दर्शन से अपनी ममत्व दृष्टि हटाइये, उस दृष्टि को समत्व की धवलता से उज्ज्वल बनाइये और फिर आत्मदर्शन की भावना को जगाइये– तब देखिये कि उसी दृष्टि मे कैसी दिव्यता उत्पन्न हो जाती है ?

ससार दर्शन मे विमुग्ध बनने वाले प्राणी जड भक्त हो जाते है और जड पदार्थो के लोभ मे कुछ का कुछ कर डालते है और यही वितृष्णा आत्म-दर्शन के पथ मे सबसे बडी बाधा बन कर खडी हो जाती है तथा चेतना शक्ति को पराजित कर देती है।

आत्म-दर्शन नही तो पतन की कोई सीमा भी नहीं

जिस व्यक्ति के जीवन मे चेतना नही, आत्म दर्शन की भावना नही तो समझिये कि उसके पतन की भी कोई सीमा नही। ससार दर्शन मे जब वह मतवाला बन जाता है तो नैतिकता के सामान्य नियमो को भी वह तिलाजलि दे देता है और निकृष्ट अमानवीय कार्यो मे प्रवृत्त हो जाता है।

एक दृष्टान्त स्मरण मे आ गया है। एक बडे करोडपति सेठ के घर का प्रसग है। सेठ जब जागता तो उसकी निगाह सब आत्माओ की ओर रहती। विशेष करके उसका ध्यान गरीबो की ओर था। वह अपनी पूजी से गरीबो का उपकार करने की भावना रखता था। किसी के सकट मे सहायता करता, किसी अनाथ को अपने साथ व्यापार मे लगाता तो हरेक जरूरतमन्द की उसकी जरूरत के मुताबिक मदद करता। एक बार ऐसा ही गरीब व्यक्ति उसके पास आया तो सेठ ने उसको अपने यहॉ मुनीम रख लिया। उसने दो ढाई सौ वेतन मागा तो सेठ ने उसके परिवार का विवरण पूछ कर चार सौ रुपया वेतन तय किया क्योकि इससे कम मे उसका निर्वाह नही हो सकता था। मुनीम को उसने यह जरूर कहा कि वह काम पूरी ईमानदारी से करे। मुनीम भी ईमानदारी से काम करता रहा और सेठ उसकी तरक्की करता रहा। उसको बडा मुनीम बना दिया। अब सारा व्यापार काम काज बडे मुनीम के हाथ मे था और अन्य व्यापारियो पर भी उसकी धाक जम गई थी। सेठ भी उसकी योग्यता से काफी निश्चिन्त हो गया था। उसको इस बात का सन्तोष था कि एक गरीब व्यक्ति के विकास मे वह सहायक बना।

सयोग की बात है कि अचानक सेठ का देहान्त हो गया। सेठानी विधवा होकर घर मे अकेली रह गई। लेन देन काफी था। अब बडे मुनीम के मन मे बदनीयत जागी कि अब ठीक मौका है, थोडी ईमानदारी को दर किनार रखकर अपने को सेठ सरीखा धनवान बना लेना चाहिये। बस पूजी की लालसा जागी तो वह पापी और विश्वासघाती बन बैठा। वसूलियॉ करके अपने घर मे रखता रहा और सेठानी से कहता रहा— क्या करू, सेठ साहब नही रहे तो आसामी ही बेईमान हो रहे है— कर्जा वापिस चुकाने मे टालमटोल कर रहे है। सेठानी ने मजबूर होकर कहा— आप कोशिश करके वसूल करिये और उसमे से आपकी इच्छा हो तो आप मुझे दे देना बाकी आप रख लेना। मुनीम ने उस बात की सेठानी से लिखा पढी करा ली। फिर दस लाख की वसूली करके सेठानी से

बोला— यह दस हजार आप ले लो। सेठानी दग रह गई कि इतना ईमानदार मुनीम इतना बेईमान हो गया। वह दुखी हुई और न्यायाधीश के पास गई। न्यायाधीश को उसने सारी स्थिति बताई कि जिस अनाथ गरीब को सेठजी ने सहारा देकर ऊँचा उठाया वही आज ऐसा विश्वासघाती और बेईमान बन गया है। तब न्यायाधीश ने सेठानी को आश्वस्त किया और मुनीम को बुलवाया। उन्होंने मुनीम को पूछा— क्या आपने सभी आसामियो से सेठजी का बकाया रुपया वसूल कर लिया है ? मुनीम ने कहा— हॉ साहब। न्यायाधीश ने कहा कि आपका सेठानी के साथ यही वायदा था कि उस वसूली मे से जितनी आपकी इच्छा होगी, आप सेठानी को देंगे और बाकी आप रखेगे। इस पर भी मुनीम ने हॉ भरी। मुनीम ने सेठानी के दस्तखत वाला इकरार भी न्यायाधीश को दिखाया। न्यायाधीश ने पूछा— आपने कितनी वसूली की और उसमे से आपकी कितनी राशि अपने लिये रखने की इच्छा है ? मुनीम ने कहा— दस लाख की वसूली की है उनमे से नौ लाख निन्यान्वे हजार राशि की मेरी इच्छा है। तब न्यायाधीश ने कहा— इस लिखापढी मे यह लिखा है कि जितनी आपकी इच्छा हो वह राशि सेठानी को देनी, बाकी आपको रखनी है। अब आपकी इच्छा नौ लाख नब्बे हजार की है तो वह राशि सेठानी को मिलेगी बाकी आप रखेगे। आपकी लिखापढी के अनुसार ही यह मेरा फैसला है। मुनीम को अपनी बेईमानी का फल मिल गया।

अभिप्राय यह है कि केवल ससार-दर्शन करने वाला व्यक्ति अपने ही हाथो अपना अध.पतन कर लेता है।

दर्शन की सच्ची अभिलाषा अवश्य पूर्ण होती है

ससार दर्शन से हटकर जो आत्म-दर्शन की ओर सम्पूर्ण निष्ठा से आगे बढता है, उसका सम्बल होता है परमात्म दर्शन। परमात्म स्वरूप के चिन्तन से इस आत्मा को उसका सही लक्ष्य प्राप्त होता है और आत्म-दर्शन की सच्ची अभिलाषा बनती है। सच्ची अभिलाषा के साथ उग्र पुरुषार्थ जागता है तथा उग्र पुरुषार्थ के बल से आत्मा की मलिनता दूर की जाती है। स्वच्छ आत्मा की अन्तर्दृष्टि दिव्य बन जाती है और वही दिव्य दृष्टि परमात्म स्वरूप की होती है। दर्शन की सच्ची अभिलाषा कभी अपूर्ण नही रहती।

नोखा

११.१०.७६

□□□

5

मद में घेर्यो रे, अंध केम करे ?

अभिनन्दन जिन दर्शन तरसिये. .
सामान्ये करी दरिशण दोहिलु
निर्णय सकल विशेष।
मद मे घेर्यो रे अध केम करे
रवि शशि रूप विलेख।।

अभिनन्दन भगवान् के दर्शन की जिज्ञासा रखने वाले भव्य प्राणी अपनी आन्तरिक वृत्ति का सकेत कविता की कडिया मे कर देते है और यह बतला देते है कि मैं अभिनन्दनीय तत्त्व के दर्शन की कितनी तीव्र अभिलाषा रखता हूँ।

आधुनिक युग मे एक परिपाटी सी चला दी गई है कि अमुक-अमुक के सम्मान मे अभिनन्दन ग्रथ प्रकाशित किये जाते है। उनमे विभिन्न लेखक उस व्यक्ति के प्रति अपने-अपने विचार प्रस्तुत करते हैं। उनमे कितनी सत्यता होती है और कितना कुछ लिखाया जाता है– यह जानने वाले जानते है। वस्तुत इन प्रवृत्तियो का रूपक यथार्थता से हटकर कुछ अ-स्वाभाविक सा हो गया है। अभिनन्दन एक बहुत बडा सम्मान है और वैसा सम्मान उसके अधिकारी पुरुष को ही मिलना चाहिये।

अभिनन्दन के योग्य कौन होता है ?

अभिनन्दन के योग्य कौन होता है तथा अभिनन्दन किसका होना चाहिये– यह एक विचारणीय वस्तु विषय है। वही आत्मा अभिनन्दनीय मानी जानी चाहिये जिसमे निज स्वरूप को पहिचानने की पिपासा जाग उठी हो, स्वय

की शक्ति को प्रकट करने की सच्ची अभिलाषा बन गई हो तथा आत्म-दर्शन से परमात्म-दर्शन के मार्ग पर अग्रगामी बनने की उत्कठा दृढीभूत हो गई हो। जो परमात्मा के स्वरूप को स्व--स्वरूप मे देखने का प्रयत्न करता है तथा स्व-स्वरूप को परमात्म-स्वरूप के समकक्ष बनाने की बलवती भावना बना लेता है, वही इस सम्मान का अधिकारी कहलाता है। अभिनन्दन भगवान् की प्रार्थना करके जो स्वयं भी अभिनन्दन बनना चाहे, उसे ही आप अभिनन्दनीय मानिये।

वास्तविक अभिनन्दन उस परमात्मा के तुल्य बनने की प्रबल भावना वाली आत्मा का हो, न कि उससे भिन्न तत्त्व का। लेकिन दुनिया भी ऐसी मायावी है कि वह अच्छे तत्त्वो को भी दुरंगा रूप दे देती है। असली घी होता ही है तो इस दुनिया ने वनस्पति घी भी बना डाला। जितने श्रेष्ठ पदार्थ दुनिया मे होते है या आते है, लोग उनके साथ वैसा ही नकली पदार्थ बनाने की तैयारी तुरन्त कर लेते है। अपने इसी मायावी व्यवहार पर वे अभिमानी भी हो जाते है। यह अभिमान यह अह उनकी बाहरी और आन्तरिक वृत्तियो मे भी इस तरह घुल मिल जाता है कि उनके मनमस्तिष्क का सन्तुलन बना नही रहता। मान के मद मे डूब जाने के बाद वह परमात्मा की प्रार्थना के योग्य भी नही रह जाता है। जो व्यक्ति अहवृत्ति से घिर जाते है, वे अपनी योग्यता का सही मूल्याकन भी नही कर पाते है। जो वे नही हैं वे यह समझ लेते है कि वे वैसे है। उस समझ के पीछे उनका मान होता है, उनकी योग्यता नही होती।

इस ससार मे अपूर्ण व्यक्ति ही अधिक है तथा जितने अपूर्ण व्यक्ति है, वे किसी न किसी विषय कषाय की वृत्ति से आच्छादित रहते है और उनमे आत्मा तथा परमात्मा के स्वरूप को समझने की अभिरुचि कठिनाई से ही जागती है। वह आच्छादन ही उसकी अपूर्णता का सबसे बडा कारण होता है। विषय-कषाय के ऐसे आच्छादनो मे अह वृत्ति, अभिमान या मद का आच्छादन मनुष्य को अधा बना देता है। 'मद मे घेर्यो रे, अध केम करे' अर्थात् मद से घिरा हुआ व्यक्ति अधा कैसे करता है, वैसा करने लग जाता है। अधापन आखो का आच्छादन ही तो होता है– मद के उन्माद मे अन्तर्चक्षु खुल नही पाते है। इसी दृष्टि से अभिनन्दन के योग्य उन व्यक्तियो को ही माना जाता है जो विषय-कषाय के सारे आच्छादनो को दूर करने के लिये सन्नद्ध हो जाते है तथा सक्रिय वन कर कार्य सम्पादन मे जुट जाते है।

पूर्णता की अवस्था
अपूर्ण व्यक्ति कैसा होता है ?

वास्तविक दृष्टि से सोचा जाय तो एक अपूर्ण व्यक्ति न तो पूर्ण पुरुष की तरह सत्य को देख सकता है, न सत्य का कथन कर सकता है। जहॉ अपूर्णता रहती है, वहॉ अयोग्यता भी होती है तो अज्ञान एव असामर्थ्य भी होता है। पूर्णता की अवस्था अरिहत देव की होती है या सिद्ध भगवान् की होती है। उस अवस्था मे ज्ञान पूर्ण, दृष्टि पूर्ण तो उन का आनन्द भी पूर्ण होता है। अपूर्ण आत्मा मे जब जागृति होती है तब उसकी गति पूर्णता की दिशा मे ही अग्रसर बनती है।

पूर्ण का यदि अपूर्ण व्यक्ति अनुसरण करता है तो एक दिन वह भी पूर्णता प्राप्त कर सकता है, लेकिन जब तक वह अपूर्ण रहता है, तब तक पूर्ण पुरुष की वाणी को पूर्णतया हृदयगम नही कर पाता है। आशिक रूप से हृदयगम करते-करते ही जब वह भी पूर्णता प्राप्त कर लेता है तभी उसकी वस्तु स्वरूप की पूर्णता उसके ज्ञान पथ मे स्पष्ट बनती है। एक एम ए पास अध्यापक का अनुभव क्या प्रथम कक्षा का छात्र सही तरीके से विश्लेषित कर सकता है ? एम ए का कैसा अनुभव होता है– यह एम ए उत्तीर्ण कर लेने पर ही विदित हो सकेगा। वह भी तुलनात्मक दृष्टि से परिपूर्ण रीति से बता सकेगा या नही– यह व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर करता है। फिर जहॉ परमात्मा की अद्वितीय शक्ति एव अभिनन्दनीय गरिमा की अनुभूति लेना क्या अपूर्ण व्यक्ति के वश की बात होती है ? उसके वश की बात भी हो सकती है, यदि वह सही लक्ष्य के साथ पुरुषार्थ करे तथा पूर्णता के सोपानो पर चढने का क्रम बनावे।

कवि ने शास्त्रीय दृष्टि से इसका थोडा सा विवेचन किया है। शास्त्रकारो ने प्रत्येक वस्तु के दो प्रकार के धर्म माने है। वैसे तो वस्तु अनन्त धर्मात्मक होती है अर्थात् उसका अनेक तरह का स्वभाव रहता है। इन अनन्त धर्मो एव स्वभावो को दो विभागो मे विभक्त कर के जान सकते है। एक सामान्य रूप मे तथा एक विशेष रूप मे। सामान्य दृष्टि से जिस रूप मे तत्त्वो का ज्ञान किया जाता है, उससे उन तत्त्वो अथवा वस्तु स्वरूप की जानकारी पूरी नही होती है। उदाहरण के तौर पर किसी व्यक्ति को देखकर इतना मात्र सामान्य रूप से कह दे कि यह मनुष्य है तो उससे उसका विशेष परिचय नही होता है। यह मनुष्य है– यह सामान्य बात है। लेकिन कैसा मनुष्य है, किस नाम से पुकारा जाता है, किस देश या नगर का निवासी है, कौन सी वृत्ति वाला है, किस भावना मे बहने वाला है आदि-आदि तरीके से जब तक उसके बारे मे विशेष जानकारी नही तो उस

व्यक्ति के बारे मे जानकारी पूरी नही होती है।

सामान्य से विशेष की ओर एव अपूर्णता से पूर्णता की ओर गति करना ही स्वस्थता का परिचायक होता है। यह मनुष्य है– इस सामान्य ज्ञान से आगे बढते है तब ज्ञात करते है कि यह गृहस्थाश्रम मे रहने वाला गृहस्थी है अथवा आत्म साधना करने वाला साधु ? वह साधु है अथवा साध्वी ? कही तीर्थकर ही तो नही ? आखिर तीर्थकर भी मनुष्य तो होते ही हैं। यह भी जानने का विषय हो सकता है कि वह सम्यक्दृष्टि है अथवा मिथ्यादृष्टि ? कहने का अभिप्राय यह है कि सामान्य ज्ञान के बाद विशेष ज्ञान की अभिरुचि बनती है तथा अपूर्णता से पूर्णता की ओर गमन किया जाता है। ज्ञान की पूर्णता के साथ वस्तु स्वरूप को पूर्णतया जान सकते है तो शक्ति की पूर्णता का विकास भी सम्पूर्ण बन जाता है।

सामान्य से विशेष ज्ञान की ओर
अपूर्णता से पूर्णता की ओर

सामान्य ज्ञान के पश्चात् विशेष ज्ञान से ही यह ज्ञात किया जा सकेगा कि मनुष्य भिन्न-भिन्न देशो और नगर ग्रामो के रहने वाले होते है तथा भिन्न-भिन्न वृत्तियो वाले होते है। उनमे से जो साधु के गुणो को अगीकार करके चलते है, वे साधु कहलाते है। उनका साधु वेश अन्य मनुष्यो के वेश से भिन्न होता है। साध्वियो का भी अपना वेश होता है। श्रावको मे भी अन्य मनुष्यो से गुण सम्बन्धी विशेषताएँ होती है। इस प्रकार मनुष्य मे साधारण एव विशेष दोनो प्रकार के धर्म होते है परन्तु विशेष धर्म से ही मनुष्य का निर्णयात्मक परिचय हो पाता है।

कवि ने भी यही सकेत दिया है–"सामान्ये करि दरिशण दोहिलू" अर्थात् सामान्य ज्ञान से 'ईश्वर है' इतना मात्र जाना जा सकता है लेकिन इतने मात्र ज्ञान से उसके स्वरूप का दर्शन नही हो सकता है। कवि उद्बोधन देते है कि यदि तू सामान्य ज्ञान से ईश्वर का दर्शन करना चाहता है तो उनके दर्शन इन चर्म चक्षुओ से करना चाहता है अथवा अन्तर्दृष्टि की सहायता से करना चाहता है ? दिव्य ज्योति का दर्शन करना है तो वह दिव्य दृष्टि से ही होगा और उसके स्वरूप का विशेष ज्ञान से विश्लेषण किया जायगा तो ही ईश्वरत्त्व का समग्र निर्णय लिया जा सकेगा। समझिये कि एक व्यक्ति जो जन्मान्ध है, उससे कहे कि सूर्य और चन्द्र की दशा का वर्णन करो तो क्या वह बता सकेगा ? जिस

जन्मान्ध ने सूर्य चन्द्र को कभी देखा नही, वह सूर्य और चन्द्र का ज्ञान दूसरो को कैसे करवायगा ? वह सुनी हुई जानकारी किसी को बता सकता है, लेकिन स्वय की अनुभूति का ज्ञान नही करा सकता है।

यहाँ 'अन्ध' की उपमा जिसको दी गई है, उसको ज्ञानी जन ने कहा है–

मद मे घेर्‌यो रे,
अधो किम करे ?

अध इसलिये नही कहा कि उसके नेत्र बन्द है यानी वह अनुभवहीन है। लेकिन जब कोई नशा करले और तेज नशा करले तो उस समय उसके नेत्र और अनुभव होते हुए भी जैसी उसकी अधता की दशा हो जाती है, वैसी ही दशा किसी भी प्रकार के मद से उन्मत्त बनी आत्मा की हो जाती है और उस अधता की दशा मे वह सूर्य चन्द्र के समान परमात्म स्वरूप का दर्शन करने मे अयोग्य होता है। उस मद का नशा उसके अज्ञान के आच्छादन को हटने नही देता है। बाहर के मद से बाहर की आखे नशे से कुछ नही देख पाती तो भावो के मद से अन्दर की ज्ञान दृष्टि अध बनी रहती है। इसे ही मदान्धता कहते है।

इस मदान्धता को दूर करके ही मनुष्य सामान्य ज्ञान से विशेष ज्ञान की ओर तथा अपूर्णता से पूर्णता की ओर प्रगतिशील बन सकता है।

मदान्धता की दशा · दृष्टि की अधता

ज्ञानी जनो का कथन है कि जिस आत्मा के ऊपर मोह और मद का चश्मा चढ जाता है, उसकी आन्तरिक वृत्तियो मे नशा सा छा जाता है और एक तरह का गहरा पागलपन पैदा हो जाता है। वह चाहे बाहर का नशा मदिरा आदि ग्रहण नही करता, लेकिन मोह और अहवृत्ति का मद उसके मन और मस्तिष्क को अभिमान से भर देता है तो बाहर शरीर मे भी उसके कारण अकड समा जाती है। बाहर से नशा नही लिया पर भीतर बाहर नशा छा जाता है। मदान्धता की दशा मे दृष्टि भी अधी बन जाती है।

मद आठ प्रकार के बताये गये है। जातिमद, कुलमद, धनमद, बलमद, बुद्धिमद आदि। जाति मद से भी मनुष्य अधा हो जाता है। अपने को उच्च जाति का मानकर दूसरो को नीची जाति का कहता है और उनके साथ उपेक्षा तथा अवमानना का व्यवहार करता है। बलमद से भी अधापन आता है। बली मनुष्य किसी का अपमान करते हुए परवाह नही करता, क्योकि वह अपने शरीर बल से

किसी को भी प्रताडित कर सकता है। बुद्धिमद तो मनुष्य को दीवाना अंधा बना देता है। वह समझता है कि दुनिया की डेढ अकल उसी मे है और जो कुछ वह कहता है, सोलहो आने सही ही कहता है। बुद्धि की शक्ति पाकर मनुष्य का नियंत्रण मे रह पाना बडा कठिन हो जाता है। बुद्धिमद तो पांखो पर उडता है। बुद्धिमद से वही मतवाला बनता है जिसने अक्षर तो पढ लिये, लेकिन जो अक्षरो के गूढार्थ मे प्रवेश नही कर सका। कहते है कि पढा लेकिन गुणा नही। बिना गुण की शिक्षा मदान्धता की कारण बन जाती है।

शिक्षा, विद्या या ज्ञान का मद मनुष्य को उच्छृखल और उद्दंड बना देता है। उसकी सोचने और बोलने की शक्ति बढ जाती है लेकिन वह उस शक्ति का सदुपयोग नही कर पाता है। वाचा की योग्यता का उपयोग वह कुतर्क प्रस्तुत करने मे करता है और समझता है कि मेरे समान कोई ज्ञानी नही है। यह मद जिस पर छा जाता है, समझिये कि दीर्घकाल तक वह नशा उतरता नही है। चाहे कितना ही बड़ा विद्वान क्यो न हो– चाहे वह आत्मा और परमात्मा के स्वरूप का सूक्ष्मतम विश्लेषण क्यो न कर सकता हो, ज्ञानमद से ग्रस्त बन कर वह स्वय आत्म दर्शन या परमात्म दर्शन नही कर सकता है।

मद के समान भ्रान्ति भी पथ का अवरोध होती है

कोई यह भी सोचे कि मै परमात्मा को जानने को अभिलाषा तथा दर्शन की प्यास रखता हू, लेकिन किससे पूछूं और कैसे दर्शन कर पाऊ– बडी विचित्र बात दिखाई देती है। परमात्मा के दर्शन दूर रहे– जहॉ स्वय के जीवन के दर्शन भी नही कर सकता हू, वहॉ क्या कुछ हो सकेगा ? कभी-कभी इस रूप मे पुरुष भ्रान्ति से भी भ्रमित हो जाता है। मद के समान भ्रान्ति भी आत्म दर्शन के पथ का अवरोध होती है। भ्रान्ति के वशीभूत होकर मनुष्य इतना भ्रमित हो जाता है कि वह वस्तु स्थिति का निर्णय ही नही कर पाता है।

भ्रान्ति का प्रसार कैसे होता है– यह आप जानते ही है। बाजार मे चलते हुए किसी ने कहा दिया– आपने सुनी नही– यह ऐसी बात हो गई है। सुनने वाले ने अधूरी सुनी और कुछ अपनी तरफ से मिलाकर आगे कर दी। उस अगले व्यक्ति ने भी कुछ अधूरी सुनी और अपनी ओर से रग मिला कर बात को आगे बढा दी। ऐसा करते-करते विचित्र दृश्य खडा हो जाता है।

एक बडे शहर में जीमणवार का प्रसग था। पहले के जमाने मे जीमणवार

मे चौखले (आसपास के) के गावो को भी न्यौता देते थे अगर जीमणवार करने वाले की शक्ति हो, सरकार की कोई रोक नही थी। वह एक पूजीपति की जीमणवार थी। पहले जीमणवार की आज्ञा पचो से लेनी पडती थी। उसने पचो को बुलाया। पचो ने पूछताछ की। उसने कहा– मै लापसी बनाऊगा और देशी घी की बनाऊगा– डालडा नही वापरूगा। उसने आज्ञा प्राप्त कर ली और सबको जीमने के लिये नोत लिया।

उसी शहर मे एक दूसरा सेठ था, उसको जब न्यौता मिला तो वह द्‌वा ले रहा था जिसमे गुड खाने की मनाही थी और लापसी गुड की थी। वह घर के बाहर खडा रहा ताकि उधर से वैद्यजी से निकले तो पूछ ले। थोडी देर बाद वैद्य जी उधर से जाते हुए दिखाई दिये, लेकिन वे बहुत जल्दी मे थे। उसने अपने लिये पूछा तो उन्होने दूर से ही कहा– लापसी जहर और वे आगे निकल गये। उसने अर्थ लगाया कि लापसी मे जहर मिला हुआ है और वैद्य जी ने उसको बचाने के लिये सूचना दे दी है। उसने भी अपने बाल बच्चो को रोक दिया तथा अपने सभी सगे सम्बन्धियो को भी सूचना करवा दी। हरेक बात को आगे से आगे चलाता रहा। इस तरह एक भ्रान्ति सभी तरफ फैल गई। सब कपडे पहन कर तैयार थे और जीमण का बुलावा भी आ गया, लेकिन भ्रान्ति से सभी भ्रमित बने हुए थे।

जब जीमने के लिये कोई नही आया तो सेठ स्वयं बुलाने के लिये घूमे। वह आग्रह करता तो लोग यही कहते– कोई बात नही। लेकिन फिर भी जीमने कोई नही आया। सेठ ताज्जुब मे पड गया कि इतना देशी घी का माल बनाया, लोग कुछ कहते नही और आते नहीं यह क्या बात है ? उसने पचो को इकट्‌ठा किया और उनके सामने सारी बात रखी। प‌च भी इधर-उधर करने लगे– आखिर एक पच ने जो भ्रम फैला हुआ था– वह बता दिया। पता लगाना शुरू किया कि बात कहॉ से उठी ? वैद्य जी को बुलाया गया, उन्होने स्थिति स्पष्ट की कि मैंने तो उस सेठ के लिये कहा था कि वह दवा ले रहा है सो लापसी उसके लिये जहर होगी। फिर पहले वैद्यजी जीमने बैठे, भ्रम मिटा तब सब लोग जीमने लगे।

इस तरह भ्रम–भ्रान्ति भी मनुष्य को किकर्त्तव्यविमूढ बना देती है। वह न यह कर सकता है, न वह कर सकता है। उसकी दशा त्रिशकु जैसी हो जाती है। मद मे मनुष्य अनिर्णय मे नही पडता, विपरीत निर्णय करता है, लेकिन भ्रान्ति मे वह अनिर्णय की स्थिति मे हो जाता है।

सही तत्त्व ज्ञान की बाधा–
किसी बात को पकड़ लेना

कोई भी व्यक्ति तब तक सही ज्ञान प्राप्त नही कर सकता, जब तक वह हठवाद से मुक्त नही होता। हठवाद से कोई भी किसी बात को पकड लेता है और उसकी उचितता अथवा अनुचितता को तोले बिना ही उसको पकडे रहना चाहता है। ऐसा हठ किसी भी प्रकार के मद की वृत्ति से उत्पन्न होता है। मद के प्रभाव से दृष्टि का औचित्य समाप्त हो जाता है और अकड के साथ बात पकड ली जाती है। कई बार यह समझ मे भी आ जाता है कि जो बात पकडी गई है, वह उचित नही है, फिर भी क्योकि पकडली है तो उस पकडने को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना कर उसको पकडे ही रखते है– चाहे उस बात का दुष्परिणाम ही क्यो नही निकले। मनुष्य किसी भी बात को झट मूंछ का सवाल बना लेता है।

कैसी विचित्र बात है कि मनुष्य बात–बेबात को पकड लेता है और इन बातो मे निन्दा-विकथा, घात, प्रतिघात की ज्यादा बाते होती है। धर्म क्रियाएँ करने को समय नही मिलता, लेकिन मद के वशीभूत होकर बात के पीछे व्यर्थ की महाभारत रचने मे व्यक्ति आगा पीछा नही सोचता और तिल का ताड बनाता रहता है। मद के ऐसे अंधेपन से आदमी को चेतना चाहिये। जो मद अपनी आंखे बन्द कर दे तथा सही तत्त्वज्ञान मे बाधा डाल दे– ऐसे मद का पोषण आत्मघाती होता है।

मद का अंधापन दूर हो
तो प्रभु के दर्शन हो !

विभिन्न प्रकार के मद से घिरे हुए व्यक्तियो की ज्ञान दृष्टि बन्द हो जाती है– वे सम्यक् निर्णय करने मे अक्षम बन जाते है। मदान्धता की अधिकता होती है सम्यक् निर्णय अथवा मद का कुफल सामने आ जाने पर भी मनुष्य उस मद का त्याग नही कर पाता है। मदान्ध व्यक्ति हर कीमत पर अपने अह को ऊपर रखना चाहते हैं। इसलिये यह मद का अधापन दूर हो तभी प्रभु के दर्शन हो सकते हैं। मद दूर होने पर ही अन्तर्वृत्तियों मे विनम्रता तथा ऋृजुता का प्रवेश होता है तथा आत्मदर्शन अथवा परमात्म दर्शन का यही मुख्यद्वार कहलाता है।

नोखा
१२.१०.७६

□□□

6

तर्क के साथ 'सु' व 'कु' का अन्तर

अभिनन्दन जिन दर्शन तरसिये
हेतु विवादे हो चित धरि जोइये
अति दुर्गम नयवाद।
आगम वादे हो गुरुगम को नहि
ए सबलौ विषवाद।।

परमात्मा अभिनन्दन के दर्शन के प्रसग से कवि आनन्दघनजी ने अपनी आन्तरिक परिस्थितियाँ अभिव्यक्त की है। केवल आनन्दधनजी की ही नही, प्रत्येक साधक की ऐसी भावनाएँ बन सकती है। दर्शन का मार्ग सामान्यतया हर किसी को उपलब्ध नही हो जाता है। इस मार्ग पर कठिनाइयाँ अवश्य आती है। यदि छद्मस्थ व्यक्ति को इस विषय मे पूछने की चेष्टा की जाय तो जिसके मस्तिष्क मे अहवृत्ति का अभिमान भरा हुआ होता है, वह अपनी ही अर्हता के साथ कुछ भी कहेगा, लेकिन वह दर्शन का वास्तविक मार्ग नही बता सकेगा।

वास्तविकता को पहिचानने की दृष्टि से ही प्रार्थना मे सकेत दिया गया है कि यदि हेतु को समझ कर नयवाद की शैली से चिन्तन किया जाय और उसमे उलझे नही– तभी तार्किक विधि से वस्तु स्वरूप का वास्तविक ज्ञान किया जा सकता है। यह वास्तविकता तभी आ सकेगी जबकि किये जाने वाले तर्क कुतर्क नही होगे। तर्क के साथ 'कु' हटाकर 'सु' जोडना होगा। इसका अन्तर यह है कि जिज्ञासा और सुतर्क मिलकर सावधानी से सही मार्ग खोज लेगे तो अभिमानजन्य कुतर्क से किसी भी व्यक्ति का पतन ही होता है। कुतर्क मे जानने की जिज्ञासा नही होती, केवल अपनी अहवृत्ति का पोषण होता है। तर्क को जब 'सु' का रूप दे दिया जाता है तो नयवाद उसकी ज्ञान प्राप्ति का सुदृढ सम्बल बन जाता है।

दर्शन का तार्किक मार्ग .
नय और निक्षेप का विधान

सात नय और निक्षेपो का विधान शास्त्रकारो ने बहुत ही भव्य तरीके से किया है। इसको समझने वाला जब तक पूरी सावधानी और बारीकी से नही समझे, तब तक वह इसकी गूढता को समझ नही सकता है। विशेष लगन के साथ समझने पर भी बडी कठिनाई होती है।

नय सात प्रकार के कहे गये है। पहले नय वाला केवल दर्शन के विचार से दर्शन कर लेता है। किसी के मन मे दर्शन करने की भावना पैदा हो रही है– दर्शन की भावना लेकर वह सामने गया और अग झुकाकर तथा माथा नवा कर वह दर्शन मे तृप्ति मानता है।

दूसरे नय वाला कहता है कि तुमने मात्र भावना भाई– अभिनन्दन भगवान् के दर्शन की बात कही लेकिन यह तुम्हारी बात ठीक नही है। एक अभिनन्दन भगवान् ही क्यो– जितने भी भगवान् है, चाहे वे अवसर्पिणी काल की चौबीसी के हो, चाहे पूर्वकाल के अनन्त तीर्थकर हो या चाहे वर्तमान काल मे महाविदेह क्षेत्र मे विचरण करने वाले सभी तीर्थकर हो और सिद्ध अवस्था मे जितनी आत्माएँ विराजमान है, वे सभी अभिनन्दनीय है। सभी के दर्शन की बात तुम नही कह रहे हो, इस कारण तुम्हारी बात गलत है। इसलिये यह कथन सही है कि सभी भगवान् अभिनन्दनीय है तथा उन सबके दर्शन करने है। यह दूसरे नय वाला पहले नय वाले के कथन को मोड देकर अपनी बात कहता है।

तीसरे नयवाला बतलाता है कि तुम्हारा कथन भी ठीक नही है। सब भगवान् के दर्शन की बात कह दी लेकिन जब तक सबका स्वरूप समझ मे नही आवेगा तब तक दर्शन कैसे होगे ? उनके स्वरूप को समझने के लिये तीर्थकरो का ज्ञान भी तुम्हे करना होगा। भविष्य की चौबीसी के बारे मे चिन्तन अभी नही करना है और महाविदेह क्षेत्र मे जन्म की स्थिति के साथ चिन्तन करते हैं तो सबके प्रतीक का विश्लेषण करके दर्शन का रूपक उपस्थित किया जा सकता है। इस तरह से तीसरा अपनी बात कहता है।

चतुर्थ नय वाला कहता है कि दर्शन है क्या ? दर्शन की बात तुम सब कर रहे हो, लेकिन वर्तमान मे एक भी तीर्थकर भरत क्षेत्र के इस भूमडल पर नही है तो उनके दर्शन कैसे करोगे ? इसलिये पहले की तीनो व्यक्तियो की बात ठीक नही है। यदि दर्शन करने है तो वर्तमान मे महाविदेह क्षेत्र मे तीर्थकर

उपस्थित है, उन्ही के दर्शन किये जा सकते है– शर्त यह है कि वहॉ पर पहुँचा जा सके।

पाचवे नय वाला लेकिन बोलता है कि नही, नही– वे तीर्थंकर तो बहुत दूर है। उनके दर्शन के पीछे सारी जिन्दगी गवा दोगे तो भी उनके दर्शन नही हो सकेगे। जब जिन्दगी ही सुरक्षित नही रहेगी तो दर्शन कैसे होगे ? इसलिये ये कथन गलत है।

छठे नय वाला कहता है कि दर्शन कहॉ करते हो ? इन बातो को पकडोगे तो भी दर्शन नही होगे तथा इन बातो को छोडोगे तो भी दर्शन नही होगे। इसलिये दर्शन के लिये दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति को देखना है। "दृश्यते इतिदर्शनम्" अर्थात् जिससे देखा जाय वह दर्शन है। नेत्रो से देखा जाता है इसलिये नेत्र दर्शन है। बाह्य नेत्रो की स्थिति सुरक्षित नही रह सकती है इसलिये आन्तरिक नेत्रो से देखा जाय तो दर्शन होगे वरना पीछे के पाचो नयो के अनुसार जो बाते कही गई है, वे दर्शन के योग्य नही है।

तब सातवे नय वाला आता है और कहता है कि तुम कहते हो वह भी पूरी बात नही है। अन्तर्चक्षुओं से देखेगे– यह तो सही है लेकिन उस प्रक्रिया को करते हुए जब तक पूर्ण तल्लीनता नही आवेगी, तब तक दर्शन नही होगे। दर्शन पूर्ण तल्लीनता के साथ ही हो सकेगे।

इस प्रकार किसी भी वस्तु स्वरूप को उसकी सभी अपेक्षाओ से देखते हुए उसकी वास्तविकता का सही विश्लेषण किया जा सके– यही नयवाद का शुद्ध अभिप्राय है। यह विश्लेषण जिस तर्कसगत चर्चा से उद्भूत होता है वही नय और निक्षेप का विधान है।

सातो नयो की सहायता से सभी तर्को का निचोड

तर्क और श्रद्धा दोनो की सहायता से वस्तु स्वरूप का ज्ञान किया जाता है। तर्क बुद्धि से उत्पन्न होता है तो श्रद्धा भावना का विषय होती है। तर्क एकागी होता है और अगर उसके साथ 'कु' जुड जाता है तो तर्क हठी भी बन जाता है। तर्क के साथ 'सु' जोडकर ही वस्तु स्वरूप को यथावत् पहिचान सकते है। नयवाद इस रूप मे सुतर्क की सर्वागीण प्रक्रिया है। सातो नयो की सहायता से सभी प्रकार के तर्को का निचोड निकल जाता है तथा उसमे से सार रूप वस्तु स्वरूप प्रकट हो जाता है।

यो देखें तो सातो नयो के तर्क लम्बे चौडे होते है और ऐसा लगता है कि यह तो बडा भारी विवाद खडा हो गया है। यही कारण है कि नयवाद को साधारण बुद्धि द्वारा समझ पाना बडा कठिन होता है। सातो नयो के लम्बे चौडे तर्को को अभी आपके समक्ष इसीलिये प्रस्तुत नही कर रहा हूॅ कि उनकी सूक्ष्मता मे आप उलझ जायेंगे। इन नयो की गति दुर्लभ है। कवि ने पहले ही संकेत दे दिया है कि यह दुर्गम कथन है। आनन्दघन जी जैसे व्यक्ति भी जिनकी आध्यात्मिक रस मे गहरी पहुॅच थी, इन नयो के स्वरूप को समझाने मे कठिनाई महसूस कर रहे थे, अत जिनकी आध्यात्मिक क्षेत्र मे प्रविष्ठि भी नही हुई हो, उनको तो इनका स्वरूप दुर्गम लगेगा ही । श्रवण करने का भी यदा कदा प्रसग आता है तो मै उनको नयवाद की जटिलता मे डालता हूॅ लेकिन मुझे महसूस होता है कि उसको अनुसरण करने की स्थिति नही रहती है। इसलिये संक्षेप मे इतना ही कह रहा हूँ कि सातो नयो को यथास्थान समझ कर, एक दूसरे का आश्रय लेकर, एक दूसरे का तिरस्कार नही करते हुए सातो नयो को एक समन्वित रूप मे देखकर वस्तु स्वरूप की खोज करनी चाहिये।

नयवाद की ही प्रक्रिया से दर्शन का मार्ग खोजेगे तो भगवान् के दर्शन भी होगे। एक-एक नय को पृथक् रूप में पकडेगे या एक-एक नय का तिरस्कार करेगे तो हाथ मे कुछ नही आयगा। सातो नयो के कथनों का समन्वय किया जाना चाहिये। सातों के बीच तर्को का आदान प्रदान इसलिये होता है कि उन तर्को मे से वास्तविक स्वरूप उभर कर ऊपर आ सके। नयवाद अपने विचारो की उलझन को दूर करने का तर्क सगत मार्ग है लेकिन अगर कोई तर्को को कुतर्को मे पलट दे और कुतर्को की पकड करले तो वह इस नयवाद मे उलझ जाता है– उल्टे उसकी मति विभ्रम बन जाती है तथा स्वरूप को विकृत दृष्टि से देखा जाने लगता है। सातो नयो की सहायता से तो सभी तर्को का निचोड निकाला जाना चाहिये तथा उस सारगर्भित निचोड से वस्तु स्वरूप का सही दर्शन किया जाना चाहिये।

कुतर्क करने लगेंगे तो उलझन मे पड़ जायेंगे

नयवाद के तर्को को कुतर्को मे बदल कर कभी-कभी वस्तु स्वरूप के विकृत दर्शन से संसार में उलझने पैदा कर दी जाती है और तब वह कुतर्कवाद दुर्भाग्यपूर्ण बन जाता है। कई बार भद्रिक लोग कुतर्को के जाल मे फंस जाते हैं, तब बुद्धिमान व्यक्ति कुतर्को मे फंसाने वालो को ठीक रास्ते पर लाने के लिये

उन्ही के हथियार से तर्क देकर उनको समाहित करते है। उससे भद्रिक लोग अपने मन को भी कुतर्को के जाल से मुक्त बनाते है। इस सम्बन्ध मे नन्दी सूत्र मे एक छोटा सा रूपक आया है कि किस प्रकार कुतर्की को उसी के हथियार कुतर्क से काट कर उसकी तार्किकता को सही रूप दिया गया।

एक भाई की आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर थी, कारण उसकी पुण्यवानी हल्की थी और उसके अन्तराय कर्म का बध अधिक था। लोग उसको पुण्यहीन कहते थे। जानते है, पुण्यहीन किसको कहते है ? आपकी लौकिक भाषा मे आप पुण्यहीन उसको कहते है, जिसके पास धन की कमी होती है। आप दूसरी पुण्यवानी को कम देखते है कि उसको मनुष्य जीवन मिला है, हो सकता है कि उसका आचरण अच्छा हो– वह नैतिकता के साथ चलता हो लेकिन लौकिक दृष्टि पैसे को ही प्रधानता देती है। खैर वर्षा हुई तब उस भाई ने सोचा कि कुछ खेती करलू ताकि खाने के लिये अन्न पैदा हो जाय। खेती करने के लिये उसको बैलो की जरूरत हुई जो उसके पास नही थे। वह पडौसी से बैल माग कर खेत पर ले गया। खेत को हाक कर शाम को बैल वापिस पडौसी के यहॉ छोडने गया तब पडौसी दरवाजे के सामने बैठा भोजन कर रहा था। उसने देख लिया कि बैल पहुँच गये है। उस भाई ने भी पडौसी को उधर देखते हुए और भोजन करते हुए देख लिया सो बैलो को यथास्थान बाध कर बिना पडौसी से बोले वह अपने घर लौट गया।

सयोगवश बाद मे एक दूसरा आदमी वहॉ आया और बाडे का दरवाजा खुला छोडकर चला गया। खुले दरवाजे से बैल बाहर निकल गये और रात को कोई चोर उन्हे ले भागा। पडौसी ने सुबह बाडे मे देखा तो बैल नही थे। उसने सोचा कि बैलो को वह भाई लाकर बाध गया था– यह मैने देखा था लेकिन वह मुझे मुह पर कहके नही गया सो उसको ही क्यो नही पकडू ? पडौसी उसके मकान पर गया और बोला– मेरे बैल कहॉ हैं ? उसने कहा मै खुद बैलो को आपके वहॉ बाधकर आया और आप यह देख रहे थे। पडौसी ने कहा– जैसे तुम मुझसे माग कर ले गये थे, वैसे तुमने बैल मुझे कब सम्भलाये ? इसलिये बैलो की जिम्मेदारी तुम्हारी है। बैल बाडे मे नही है और उनकी कीमत तुमको मुझे चुकानी पडेगी।

उसने कैसा तर्क लगाया ? यह सुतर्क है या कुतर्क ? यह तो उस गरीब आदमी को जान-बुझकर सताने की बात थी। वह पडौसी उस भाई को साथ लेकर इन्साफ कराने के लिये दरबार की ओर रवाना हुआ। रास्ते मे सामने से एक घुडसवार आ रहा था। घोडा कुछ चमका और घुडसवार को उसने नीचे गिरा दिया। घोडा भागने लगा तो घुडसवार चिल्लाया मारो, मारो-मार कर

पकडो। उस गरीब भाई ने देखा कि इसने कहा है तो इसका काम कर दू। उसने एक पत्थर उठा कर घोडे की तरफ फैका। सयोग की बात कि वह पत्थर घोडे के मर्मस्थल पर लगा और घोडा गिर कर मर गया। तब उस घुडसवार ने कहा– तुमने मेरे घोडे को क्यो मारा ? इसकी कीमत मैं तुमसे वसूल करूगा। बैलवाले के साथ घोडे वाला भी हो गया और तीनो दरबार की तरफ चले।

दरबार दूर था और शाम पड गई सो तीनो एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। तभी एक नट मडली वहाँ आ गई। नट भी वृक्ष के नीचे सो गये। गरीब भाई को नीद नही आई– वह सोचने लगा कि बैल और घोडे की कीमत मुझसे चुकेगी नही सो मर जाना ही ठीक है। उसने सोचा कि कपडे से फासी लगा कर मर जाउ। उसने वृक्ष पर चढ कर कपडा एक किनारे से डाली से बाधा और दूसरे किनारे से अपने गले को बाध कर वह झूल गया। कपडा पुराना था सो फट गया और वह धम से नटो के सरदार पर गिर पडा। वह ऐसा गिरा कि सरदार की मौत ही हो गई और वह बच गया। सब जग गये– हो हल्ला मच गया। अब दरबार के लिये नट लोग भी साथ हो गये।

न्याय का काम राजकुमार ही किया करते थे। दरबार मे पहुँच कर तीनो ने गरीब भाई के विरूद्ध अपनी-अपनी फरीयाद रखी। गरीब भाई– सच्चा आदमी था– जिस कुतर्क के साथ फरियादे रखी गई, वह उस को मानता रहा। राजकुमार समझ गया कि यह गरीब आदमी सच्चा है और मुसीबत मे फसा दिया गया है। इन लोगो के कुतर्क को अब कुतर्क से ही काटना पडेगा।

राजकुमार ने बैल वाले से कहा– यह तुम्हारे बैलो की कीमत तो देगा लेकिन तुम्हे अपनी आखे इसको देनी पडेगी। तुम्हारी आखो ने बैलो को देखा और स्मृति के माध्यम से अभी भी देख रही है। तुम इसके मुह की बात ही मानना चाहते हो तो पहले अपनी आखे निकाल कर रख दो। बैलो की कीमत तुमको यह भाई नही दे सकेगा तो दरबार से मिल जायगी। बैल वाला यह सुनकर सन्न रह गया, बोला– मुझे कीमत नही चाहिये, श्रीमान्।

राजकुमार ने तब घोडे वाले को पूछा– घोडे को इसने तुम्हारे कहने पर मारा या बिना कहे मारा ? उसने कहा– मैने जान से मारने का थोडे ही कहा था ? राजकुमार ने फैसला दिया– ठीक है, तुम भी अपनी जीभ दे दो, घोडे की कीमत मिल जायगी। वह भी बिना कीमत लिये चला गया। फिर बारी आई नटो की। राजकुमार ने कहा– इस भाई के ऊपर से गिरने की बात समझ मे नही आई, तुम्हारे मे से कोई उसी तरह गिर कर बतावे तो पता चले। नट घबराये कि किसी एक की और जान जायगी। वे भी चले गये।

तो इसमे हेतु तो लगाया और तर्क से ही राजकुमार ने तीनो को शान्त

किया, लेकिन यह कुहेतु या कुतर्क था और ये कुतर्क उनके कुतर्कों को काटने के लिये थे। लोहे से लोहा कटता है– यह ठीक है, परन्तु कुतर्क मे पडने से उलझन बढती है और सुतर्क के साथ चर्चा करने से सदा ही कुछ न कुछ सार ही निकलता है।

जैसे दही को मथने से मक्खन निकलता है, वैसे ही जिज्ञासा भाव से अगर किसी वस्तु स्वरूप पर चर्चा की जाय– विचारो का आदान प्रदान किया जाय तो उससे सारभूत तत्त्व प्रकट होता है। नयवाद इस प्रकार के मथन की एक परिपुष्ट प्रणाली है कि स्वरूप के सभी पक्षो को लक्ष्य करके परिपूर्ण चर्चा कर ली जाती है, जिससे जिस विचार मे जितना सत्याश मिले, उसे ग्रहण कर लिया जाय। यह कार्य सुतर्क के आधार पर ही सम्पादित किया जा सकता है।

कुतर्क से कदाचार .
सुतर्क से सत्य का साक्षात्कार

तर्क को छैनी या टाकी के रूप मे मान सकते है जो अनगढ पत्थर को सुघड बना देती है। एक व्यक्ति का ज्ञान जब दूसरे के साथ तर्कपूर्ण चर्चा के रूप मे आदान-प्रदान से गुजरता है तो इस ज्ञान मे सुघडता पैदा होती है तथा विचार शक्ति एव दृष्टि पैनी बनती है। यही तर्क जब मदान्धता, हठ या दुराग्रह के कारण कुतर्क का रूप ले लेता है तो वह कदाचार बढाता है। सदा ही कुतर्क से मिथ्यावाद का पोषण होता है। इसके विपरीत जिज्ञासा भाव से जब सुतर्कों के साथ कोई ज्ञान-चर्चा की जाती है तो जैसे खलिहान मे भूसे को उडाकर शुद्ध गेहू प्राप्त कर लिया जाता है वैसे ही उस ज्ञान चर्चा मे से सारभूत तत्त्व उद्भूत हो जाता है। इस प्रकार सुतर्क के माध्यम से सत्य का साक्षात्कार हो सकता है।

'सु' और' 'कु' मे पूर्व, पश्चिम का अन्तर आ जाता है। तर्क शक्ति वही है लेकिन एक उसका सदुपयोग होता है तो दूसरा उसका दुरुपयोग । कवि का यही कथन है कि कुतर्क के वशीभूत होकर ससार के प्राणी आत्म परिणति के तत्त्व को समझने के लिये तैयार नही होते है– कुतर्क के जरिये वे ज्ञान का खिलवाड करते है– यह तर्क शक्ति का दुरूपयोग है। नयवाद को भी ऐसे लोग विकृत रूप दे देते है। सुतर्क के साथ चलना बडा कठिन होता है, लेकिन शुद्ध नयपूर्ण सुतर्क के माध्यम से ही सत्य का साक्षात्कार हो सकता है तो भगवान् के दर्शन भी किये जा सकते है।

नोखा
१३ १०.७६

❑❑❑

7

आपत्तियों के सामने अटल आस्था चाहिये !

अभिनन्दन जिन दर्शन तरसिये
दर्शन दुर्लभ देव।
मत मतभेदे रे जो जई पूछिये
सहु थापे अहमेव ।।

जिज्ञासु भव्य आत्मा जब अपने मूल स्वरूप को प्रकट करने का अन्त करण पूर्वक सकल्प बना लेती है तो उस सकल्प को सिद्ध करने के लिये उसे पुरुषार्थ का बल लेकर आगे बढने की आवश्यकता रहती है। सकल्प दृढ विचार और निश्चय होता है तो उसकी क्रियान्विति पुरुषार्थ की सहायता से ही हो सकती है। जब सकल्प और पुरुषार्थ के रूप मे दो शक्तियॉ सयुक्त हो जाती है तो वह आत्मा निर्भीक बन जाती है। सकल्प सिद्धि के मार्ग मे कितनी ही आपत्तियॉ क्यो न आवे– वह आत्मा अपने लक्ष्य से किसी भी रूप मे विचलित नही होती है क्योकि उसे अपनी अटल आस्था का पूर्ण सम्बल होता है। श्रेष्ठ सकल्प, अटल आस्था एव प्रबल पुरुषार्थ की त्रिपुटी मिल जाय, तब आपत्तियो पर विजय पाना कठिन नही रहता है।

वस्तुत आत्म विकास के लक्ष्य को जीत लेना कठिन नही है। कठिन होता है उस विजय के अनुकूल आन्तरिक पृष्ठभूमि का निर्माण करना। इस त्रिपुटी की एक जुटता वाछित पृष्ठ भूमि का निर्माण कर लेती है।

संकल्प से प्रयाण होता है, पुरुषार्थ से गति मिलती है

आत्मोन्मुख साधक जब अपना दृढ सकल्प बना लेता है कि उसे अपने

मूल स्वरूप को प्राप्त करना है तो उस सकल्प की प्रबलता से वह आत्मविकास के पथ पर प्रयाण कर लेता है– चल पडता है। उस सकल्प के साथ जब पुरुषार्थ मिलता है तो साधक को उस पथ पर अग्रगामी बनने की गति प्राप्त होती है। वे साधक तब इस ससार रूपी अटवी के अन्दर अपनी गति को वेगवती बना कर चलने का प्रयास करते है और यही भावना रखते है कि वे शीघ्र से शीघ्र प्रभु के दर्शन करले अर्थात् अपने आत्म-स्वरूप को प्रभु के परमात्म स्वरूप के समकक्ष ले जावे।

कल्पना करे कि दुर्गम पहाडियो के परले छोर पर स्थित भव्य नगर को देखने के लिये एक पथिक चल पडता है। उसका लक्ष्य है उस भव्य नगर तक पहुॅचना तो यही उसका सकल्प होता है और सकल्प के बल पर ही वह प्रस्थान कर लेता है। प्रस्थान को पुरुषार्थ का श्री गणेश कह सकते है, क्योकि पुरुषार्थ ही सकल्प का अमली रूप होता है। ज्यो-ज्यो उसका पुरुषार्थ बल पकडता जाता है, त्यो-त्यो वह अपनी चाल को तेज बनाता जाता है। उसके सामने पहाडियॉ होती है– साक्षात् आपत्तियो के समान– जिन्हे पार करके ही वह भव्य नगर मे प्रवेश कर सकता है।

वह पथिक उन ऊॅची-ऊॅची पहाडियो की तरफ देखता है और पहाडियो के समीप पहुॅचने लगता है तो उसका दिल सहमना शुरू होता है। वह आने वाले खतरो को सोचता है तो उन पहाडियो के भीतर होकर जाने मे रूक सा जाता है। वह देखता है कि पहाडियो की थका देने वाली चढाई, घने और बीहड जगलो की भयकरता तथा वन्य पशुओ की गर्जनाए उसके सामने है और क्या मालूम कि इन सारी आपत्तियो के बीच मे उसका जीवन भी रहेगा या कही उसकी ही इतिश्री न हो जाय। कितनी तरह के जगली जानवरो से किस तरह सामना होगा– कौन जाने ? उसका मन आगे बढने से सहमता है।

मानसिक दुर्बलता के इन क्षणो मे फिर सकल्प शक्ति सामने आती है और उसको ललकारती है कि जो उसने सोचा है, क्या उसे वह पूरा नही कर सकेगा ? सकल्प शक्ति उस मानसिक दुर्बलता को दबाती है, तब वह पथिक साहस जुटाता है और अपने पुरुषार्थ को सजग बनाता है। जाने की तमन्ना मजबूत होती है तो कोई साथी नही होने पर भी वह हिम्मत से आगे बढता है। वह सोचता है कि चलो मै इष्टदेव का स्मरण करके आगे बढता हूॅ। सकल्प और पुरुषार्थ की शक्ति उसे आगे बढाती है।

जब आपत्तियाँ आती है तो अटल आस्था पल्ला थाम लेती है

जो इष्ट देव का स्मरण करता है– वह अपनी आस्था का परिचायक होता है। यह आस्था जितनी सुदृढ होती है, पथिक का साहस उतना ही सुदृढ बनता है और यह आस्था जब अटल बन जाती है तो पथिक भी अजेय हो जाता है। तब वह आपत्तियो को जीत लेता है– आपत्तियॉ उसे पराजित नही कर पाती हैं। जब सकल्प शिथिल होने लगता है और पुरुषार्थ मन्द बन कर साहस टूटने लगता है, तब अमिट आस्था का सम्बल उस हारे थके पथिक का पल्ला थाम लेता है। वह फिर सन्नद्ध हो जाता है आगे बढने के लिये और हिम्मत के साथ आगे चल पडता है क्योकि उसे अनुभूति मिल जाती है प्रभु के दर्शन की एव अपनी ही आन्तरिक शक्ति की। उसकी अटल आस्था तब उसे आत्म-विकास के पथ पर से डिगने नही देती है।

वह अटल आस्था के साथ चल पडता है तो समझिये कि वह उस भयकर अटवी को सुरक्षित रूप से पार भी कर सकता है और उस भव्य नगर मे अपने चरण रख सकता है। लक्ष्य पर पहुॅचने के बाद उस अपूर्ण आनन्द का भी उसको अनुभव मिल सकता है जो अन्यथा समव नही होता।

उस पथिक के समान ही कवि का सकेत इस प्रार्थना मे साधक के लिये है। साधक सोचता है कि भगवन्, आप अपने सिद्ध स्वरूप मे विराजमान है और सिद्ध स्थिति यहॉ से ऊपर है। बीहड जगल घाटियॉ तो इसी भूमडल पर रह जाती है, लेकिन सिद्ध स्थिति तक पहुॅचने के लिये भी बीच मे बडी बीहडता है। परमात्मा के समीप पहुॅचने के लिये उर्ध्व गमन करके, ऊपर उठना होता है। आप सोचेगे कि ऊपर जाने के लिये तो किसी न किसी वाहन की जरूरत पडेगी, लेकिन ध्यान रखे कि वहॉ तक ले जाने वाला कोई वाहन नही है। अपनी यह आत्मा ही वाहन और वाहक दोनो होती है।

इस वैज्ञानिक युग मे वैज्ञानिको ने कुछ यन्त्र तैयार किये है। तथाकथित चन्द्र लोक पर मानव उतर चुका है। मगल ग्रह पर अभी मानव तो पहुॅचा नही है लेकिन यत्रो के माध्यम से शोध का काम चल रहा है। ये रॉकेट, ये अवकाश यान तथा आधुनिक यत्र भी मनुष्य को सिद्ध क्षेत्र तक पहुॅचाने मे सक्षम नही हैं, क्योकि मनुष्य यदि अधिक विकास करके और भी तीव्र गति वाले वाहन तैयार कर ले तो भी सूर्य मडल के समीप ही पहुॅच पायगा। उससे आगे बढने पर तो वह भस्म हो जायगा। सूर्य मडल से तो बहुत दूर ऊपर बारह देवलोक है– एक

दूसरे के ऊपर से ऊपर। फिर इसी तरह नौ ग्रेवेयक तथा उनसे ऊपर पाच अनुत्तर विमान है। इनके ऊपर एक विशाल शिला है जो औधे छत्ते के आकार की है। यही वह स्थान है, जहॉ सिद्ध आत्माएँ विराजमान रहती है।

इस तरह आत्म विकास यात्रा का लक्ष्य है यह सिद्ध शिला, जहॉ पहुँचने के बीच मे कर्मबध की भयावह आपत्तियॉ खडी हुई है। जिन्हे पराजित करना अटल आस्था से ही सभव होता है।

विकास यात्रा मे बाहर दूर नही भीतर गहरे जाना है।

सिद्ध शिला के इस विवरण से हतोत्साहित होने की आवश्यकता नही है क्योकि तीर्थकर देवो ने भगवान् के दर्शन करने के लिये कही दूर तक भटकने की आज्ञा नही दी है और न यह कहा है कि आकाश मे ऊपर उडो या पाताल के भीतर उतरो। यह भी नही कहा कि इस भूमडल के कोने-कोने मे भटकते रहो तो भगवान् के दर्शन होगे। उन्होने तो सुगम किन्तु मार्मिक उपाय बताया है कि यदि तुम्हे सिद्ध भगवान् के तुल्य भगवान् के दर्शन करने है तो कही बाहर मत जाओ और शरीर को इधर उधर मत भटकाओ। जहॉ शरीर है, वही पर नियमित रूप से सुखासन पर आसीन होकर इन्द्रियो के बाहरी व्यापार को रोक दो अर्थात् कान जो बाहर के शब्द सुन रहे है, उन शब्दो के पीछे जो तुम्हारा उपयोग दौड रहा है कि ये किस के शब्द है, कहॉ से आ रहे है, कैसा सुन्दर गायन है, कविता मे कैसा लय है आदि-आदि तो उस उपयोग को बाहर से समेट कर भीतर मे नियोजित करो। चित्त वृत्ति के अनेक रग बिरगे दृश्य ये आखे देखना चाहती है– उन पलको को बाहर से बद करलो ताकि उनकी दृष्टि गहरी बनकर भीतर उतरे। नासिका को अच्छी सुगध आ रही है और वह मन को बाहर खीच रही है तो मन उसको बाहर से खीच कर भीतर मे केन्द्रित कर ले। जिह्वा जो स्वादिष्ट पदार्थ चखने की प्रबल लालसा लेकर चल रही है, उसे विराम दे दो। इसी तरह मन की उडान स्पर्श इन्द्रिय के बाह्य सुखो मे हो रही है तो उसे भी विराम दे दो। इन्द्रियो के सभी बाहरी व्यापारो को जितने समय तक रोक सको, रोककर मन को आत्मस्थ बनाने का अभ्यास करो।

आत्मा की इस विकास यात्रा मे बाहर दूर नही, भीतर गहरे जाना है। मन की गतिविधियो को इन्द्रिय सुख मे से निकाल कर उसकी गतिशीलता को आन्तरिकता मे प्रवेश कराना है। यही आत्म साधना है और यही मन को आत्मस्थ बनाने का अभ्यास है क्योकि इसी साधना और इसी अभ्यास की

सहायता से आत्मा अपने लक्ष्य तक पहुँच सकेगी– सिद्ध स्थिति को प्राप्त कर सकेगी। आप अपने आप के अन्दर भव्य स्वरूप को देखने की कोशिश करेगे तो वही पर प्रभु के दर्शन होगे।

वास्तव मे प्रभु अत्यधिक समीप है। उनके लिये भूमडल पर भटकने या आकाश मे उडने की आवश्यकता नही है। यह बात जब मनुष्य के मस्तिष्क मे आती है तो वह उपरोक्त सुगम किन्तु मार्मिक उपाय को अपनाने का सकल्प बनाकर चलना शुरू कर देता है, लेकिन इस यात्रा मे भी जब वह पाचो इन्द्रियो के व्यापार को रोक कर एव मन को आत्मस्थ बना कर भीतर देखता है तो वहाँ भी उसको बीहड वन घाटी तथा भयावह दृश्य दिखाई देते है। ये भीतर की वन घाटियाँ बाहर की वन घाटियो से भी अधिक दुर्गम होती है। प्रभु का दर्शन इन्ही घाटियो को पार करने के बाद हो सकता है।

आत्मा की अनन्त शक्तियाँ तथा आठ कर्मो की वन घाटियाँ

एक साधक की विकास यात्रा मे परमात्म स्वरूप की उपलब्धि के बीच मे वन घाटियो के रूप मे आपत्तियाँ सामने लाने वाले होते है आत्म स्वरूप को आच्छादित किये हुए आठ कर्म। ये घाती और घनघाती कर्म आत्मा की अनन्त शक्तियो पर छाये हुए है। इन आवरणो को दूर कर देने पर अपने स्वय के प्रभु के शीघ्र ही दर्शन हो जाते है।

आत्मा के आठ कर्म बताये गये है। आत्मा की अनन्त शक्तियो को आठ विभागो मे बाट दिया गया है। जो ज्ञान की उसकी विराट् शक्ति है– सारे ससार को जानने वाली एव देखने वाली है, उस पर आच्छादन करने वाले जो कर्म है, उनको ज्ञानावरणीय कर्म कहते है। ज्ञान की शक्ति को दबाने वाला यह कर्म होता है। इन्ही पदार्थो को सामान्य रूप से नही देखने की क्षमता व्यक्त करने वाला दर्शनावरणीय कर्म होता है। सामान्य ज्ञान मे बाधक एक ऐसा कर्म है जो न तो बाहर के और न अन्दर के किसी भी तत्त्व को सही स्वरूप मे देखने देता है और न आत्मा को कभी भी स्वस्थ होने देता है– वह कर्म होता है मोहनीय कर्म जो घनघाती कर्म होकर सभी कर्मो का राजा कहलाता है। मोह कर्म आत्मा को पागल बनाये रखता है। मिलते हुए पदार्थो मे बाधा देने वाला कर्म होता है अन्तराय कर्म। यह उपलब्ध हो रही वस्तु की उपलब्धि मे रूकावट डाल देता है।

इन चार कर्मो को घनघाती कर्म कहते है जो ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय तथा अन्तराय होते है। उन चार कर्मो को नष्ट किये विना अपने प्रभु

के दर्शन नही हो सकते है।

अगले चार कर्म होते है– वेदनीय, नाम, गौत्र और आयुष्य। ये चार कर्म प्रभु दर्शन मे बाधक नही होते बल्कि इनके रहते हुए भी परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। कवि ने सकेत दिया है कि– "घाती डूगर आडा अति घणा"। यह सकेत इन्ही घन-धाती चार कर्मो का सकेत है। ये चारो घनघाती कर्म इस आत्मा के इसी शरीर पिड मे रहने वाले अपने ही परमात्मा के दर्शन करना चाहे तो वन घाटियो और डूगरो की तरह बीच मे आते है जिनको पार करना जरूरी होता है।

उस पथिक के समान जब साधक इस विकास यात्रा के लिये सकल्प बद्ध होकर प्रयाण करता है तो मिथ्यात्व कर्म उसके साहस को तोडना चाहता है। उनको हटाने की कोशिश की जाती है तो ससार के पौद्गलिक लुभावने हृदय विमुग्ध बनाते है। उसमे पुरुषार्थ पकड कर आगे बढते है तो अन्तराय कर्म रोक देता है। इस तरह कर्मो की आपत्तियॉ एक के बाद एक और कभी सामूहिक रूप मे आती रहती है। आत्मा साधना के क्षेत्र मे बढती है– अन्दर ध्यान लगाती है तो ये घनघाती कर्म उसमे बाधक बन कर आडे आ जाते है जिससे वह ध्यान भी नही लगा पाती है। अपने ही भीतर प्रवेश करने एव अपनी ही आन्तरिकता मे रमण करने के लिये कोई साथी भी नही होता है। आत्मा ही अपनी मित्र होती है यदि वह इन आपत्तियो पर विजय प्राप्त करती हुई आगे से आगे बढती रहती है तथा आत्मा ही अपनी शत्रु बन जाती है अगर वह इन कर्मो के सामने अपनी पराजय स्वीकार करके पौद्गलिक लुभावने दृश्यो मे उलझ जाती है।

लेकिन ज्ञानीजनो का कथन है कि घबराओ मत। आत्मा की अनन्त शक्तियो को प्रकट करना चाहते हो तो अपनी आत्मा को ही मित्र और साथी मानो तथा आत्मस्थ बनने का अभ्यास करो। आत्मा का इस कठिन यात्रा मे कोई प्रधान सम्बल है तो वह है अटल श्रद्धा इसे न भूलो।

अटल श्रद्धा का बल एक अपूर्व बल होता है

इन घनघाती कर्मो की डरावनी वन-घाटियो मे जब प्रवेश करना हो तो सकल्प एव पुरुषार्थ के साथ श्रद्धा का सगम करा लो और अपने इष्ट का स्मरण करते हुए बढ चलो। अरिहत देवो ने इन घाती कर्मो को हटाया है और नष्ट किया है। वे इस प्रकार वन-घाटियो को लाघ गये और उन्होने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। इन अरिहतो के प्रति अटल श्रद्धा का बल ग्रहण करे तो वह श्रद्धा बल एक प्रकार का अपूर्व बल होता है।

आप जानते है अरिहन्त देवो को ? प्रात काल प्रार्थना के समय नमस्कार मत्र का उच्चारण किनके प्रति करते है ? किन्हे सर्वप्रथम नमस्कार करते है आप ? उसमें प्रथम नमस्कार अरिहत देवो को किया जाता है। उनको नमस्कार करने का यही अभिप्राय है कि उन्होने घनघाती कर्मो को नष्ट कर देने का जो सत्पुरुषार्थ किया है, वह वन्दनीय है क्योकि उनके सत्पुरुषार्थ से ही ससार के भव्य प्राणियो को उस मार्ग पर आगे बढने की प्रेरणा मिलती है। यह प्रेरणा उनके प्रति अटल श्रद्धा धारण करने के बल से फूटती है।

नमस्कार मत्र के तुल्य अन्य कोई मंत्र नही है, लेकिन परम्परा से जिनको यह मत्र मिला है, वे ही लोग इस मंत्र के महत्त्व को कम जानते है। इसका पहला पद है– "णमो अरिहताण" अर्थात् अरिहन्त देवो को नमस्कार हो। घनघाती कर्म रूप शत्रुओ को जो भी नष्ट कर दे, वे अरिहन्त होते है। यहॉ पर नाम पूजा नही है, गुण पूजा है। सभी को गुणो की दृष्टि से नमस्कार किया गया है।

यदि अटल श्रद्धा हो तो इस नमस्कार मत्र मे अपार शक्ति मानी गई है। यह मत्र अगर चिन्तन मे रमा हुआ है तो कोई भी आपत्ति या बाधा अपने सामने टिक नही सकती है, बल्कि समीप भी नही आ सकती है। मेरे भाई कभी सोचते है कि हम तो ससार मे रहते है और ससार की दृष्टि से अनेक प्रकार की आपत्तियॉ आती है, उनसे पार पाने के लिये कोई सिद्ध मंत्र मिल जाय तो बडा अच्छा हो। ससार की क्या– आत्मा की विकास यात्रा की बाधाएँ भी इस नमस्कार मत्र के सामने नही ठहर सकती है। मै कहता हूँ कि यह नवकार मत्र सब मत्रो का सार है– समस्त प्राणियो के लिये मगल का स्रोत है, गुणो की गरिमा है। चाहिये इसके प्रति अटल श्रद्धा।

अटल आस्था को अपनावें तो आपत्तियो का अस्तित्व ही नही रहेगा

इस नमस्कार मत्र के प्रति अटल आस्था को अपनावे तो आपत्तियो का अस्तित्व ही नही रहेगा– न बाहर और न भीतर। तब मन की गति स्वस्थ भी हो जायगी तथा निराबाध भी। तब न सकल्प डगमगायेगा, न पुरुषार्थ टूटेगा और न साहस ही छूटेगा । अटल आस्था सभी आत्मिक गुणो को सन्तुलित बनाये रख कर आत्मा को विजय के पथ पर अग्रसर बना देगी।

कमाई के धन्धे कई प्रकार के होते हैं। कुछ लोग व्यापार करके कमाई करते है, कोई नौकरी करते है तो कोई ज्योतिष व हस्तरेखा देखकर आमदनी

कर लेते है। कई लोग मत्रो के शब्दो से अपनी आजीविका उपार्जित करते है। कोई दु.खी व्यक्ति आता है तो वह दो चार शब्दो को इधर उधर जोड कर कहता है– जाओ तुम्हारा दु ख दर्द दूर हो जायगा। उसका दु.ख दर्द तो दूर होगा या नही– मत्र कहने वाला पैसा प्राप्त करके अपना दु ख दर्द जरूर दूर कर लेता है। इस प्रकार अलग-अलग बाते जितनी आती है, उनमे सार तत्त्व का महत्त्व समझने की कोशिश कम की जाती है और भविष्य पर विश्वास कम होता है। नमस्कार मत्र के महान् महत्त्व को समझने के लिये भी आन्तरिक दृष्टि की आवश्यकता होती है। कई लोग सोचते है कि हमे भी नमस्कार मत्र याद है– बच्चो को भी याद है, अगर इसमें कोई चमत्कार होता तो वह हमारे जीवन मे प्रकट हो जाता। मै सोचता हूँ कि मनुष्य चमत्कार तो देखना चाहता है लेकिन वह श्रद्धा करना और साधना करना नही सीखता है।

यदि मनुष्य जीवन मे अटल आस्था को अपनाले तथा उसकी महत्ता को हृदयगम करले तो नमस्कार मंत्र का अपूर्व चमत्कार भी वह देख सकता है। इस मत्र को सिद्ध करने वाले के सामने देवी देवता भी चरणो मे नतमस्तक हो जाते है। इस मत्र के साधक के सामने इस लोक से सम्बन्धित या परलोक से सम्बन्धित कितनी ही आपत्तियॉ क्यो न आवे– वे अपने आप छट जाती है।

जिन आत्माओ ने इस महामंत्र को सिद्ध किया, उनकी साधना की अवस्था मे चाहे उनके शरीर की चमडी उधेडी गई, सिर पर धधकते हुए अंगारे रखे गये या कि अन्य प्रकार के सकट आये, लेकिन वे साधक अपनी साधना से तनिक भी विचलित नही हुए। यह उनकी अटल आस्था का ही सुपरिणाम था।

अटल आस्था का चमत्कार :
एक आदर्श दृष्टान्त

जो नमस्कार मत्र के प्रति याने कि अपनी ही आत्मा के मूल स्वरूप के प्रति अटल आस्था रखते है, उनकी छोटी-छोटी क्या बडी-बडी आपत्तियॉ भी दूर हो जाती है तथा छोटे-छोटे चमत्कार क्या आत्म-विकास का महान् चमत्कार उन्हे दिखाई देता है। जयकुमार का कथा प्रसग अटल आस्था के चमत्कार को प्रदर्शित करता है।

जयकुमार एक राजकुमार था। वह भरतेश्वर के नजदीक पहुँचा तथा वहॉ से सत्कार पाकर हाथी पर सवार हुआ। नमस्कार मत्र पर उसका उस समय विश्वास नही था– वह बाह्य दृश्यो मे ही उलझा हुआ था। उसकी धर्मपत्नि का नाम सुलोचना था और वही उसके ध्यान की केन्द्र बिन्दु थी। वह हाथी पर

बैठकर चल रहा था लेकिन उसका ध्यान सुलोचना की ओर ही लगा हुआ था। सहसा हाथी गगा नदी के प्रवाह मे घुसा । सुलोचना की कल्पना मे उसे पता नही रहा कि हाथी कहॉ जा रहा है ? लेकिन जैसे ही हाथी आगे बढा तो कोई चीज उसके पैर से टकराई । हाथी ने बल लगाया, पर उसका पैर अन्दर धसता ही चला गया। उसके मुह से दर्दनाक चिघाड निकली तब कही जाकर जयकुमार को होश आया। उसने सोचा कि हाथी की जल समाधि के साथ उसकी भी जल समाधि हो जायगी, अब वह क्या करे ?

जो भौतिक तत्त्वो को ही सब कुछ समझता है तथा आन्तरिक शक्ति को नही पहिचानता है, वह ऐसे अवसर पर किंकर्त्तव्यविमूढ बन जाता है। जयकुमार की देह मे बहुत ताकत थी– वह बली शत्रु को भी पराजित कर सकता था, परन्तु उस अज्ञात शत्रु से वह भयभीत हो उठा। हाथी भी चिघाड रहा था और जय कुमार भी जोर जोर से चिल्ला रहा था। यह कोलाहल सुनकर उस पार शिविर वाले लोग बाहर निकल आये– इन्ही मे सुलोचना भी थी। उसने पति की दुर्दशा देखी ता उस संकट की बेला मे वह नमस्कार महामत्र का ध्यान करने लगी क्योकि उसकी इस महामंत्र के प्रति अटल आस्था थी।

नमस्कार महामंत्र के अखंड जाप से गगा को अधिष्ठातृ देवी का सिहासन कम्पायमान हुआ। देवी ने देखा कि सुलोचना पर सकट आया हुआ है। वह वहॉ से दौडी, क्योकि महामत्र के प्रति उसकी आस्था को निभाने का प्रश्न था। देखा तो हाथी और जयकुमार दोनो करीब-करीब डूब चुके थे। एक व्यतरी मगर बनकर यह दुष्ट कार्य कर रही थी। देवी ने उसे तुरन्त रोका। देवी की शक्ति के सामने व्यतरी भाग खडी हुई और हाथी जयकुमार को लेकर सकुशल उस पार पहुँच गया। तब देवी ने अपनी शक्ति से एक सिहासन बनाया और उस पर सुलोचना को बिठा कर वह उसका स्तुति गान करने लगी।

हाथी पर बैठे हुए जयकुमार ने जब यह देखा तो उसे आश्चर्य हुआ कि जिस देवी ने उसके प्राण बचाये हैं, वह भला उसकी पत्नि का स्तुति गान क्यो कर रही है ? उसने देवी से कहा– सुलोचना को आपकी स्तुति करनी चाहिये कि आपके उपकार से उसका वैधव्य दु ख बच गया, लेकिन यह विपरीत व्यवहार कैसे हो रहा है ? तब देवी ने कहा– राजकुमार, तुम नही जानते कि यह देव रूप जो मुझे मिला है, वह सुलोचना की घुट्टी से मिला है। इसी ने मेरी श्रद्धा नवकार मत्र के प्रति अटल बनाई।

देवी ने आगे बताया। विन्ध्याचल के समीप विन्धय नगरी मे विन्ध्यपति राज्य करते थे। प्रियगु उनकी रानी थी। यह सुलोचना उनकी राजकुमारी थी। विन्ध्यपति के साथ मेरे पिता कपन महाराज की मित्रता थी। अच्छे सस्कारो के

लिये मेरे पिता ने मुझे सुलोचना के पास छोड दिया था। उस वक्त भी सुलोचना की नमस्कार मत्र के प्रति अटल आस्था थी– उसी के निर्देश से मैं भी इस महामत्र के प्रति आस्थावना बन गई। एक बार एक सर्प ने मुझे काट खाया, बहुत उपचार के बाद भी कुछ नही हुआ तो अन्तिम अवस्था मे सुलोचना ने मुझे नमस्कार मत्र का ही सहारा दिया जिसके फलस्वरूप मै गगा की अधिष्ठातृ देवी बनी। इसीलिये हे कुमार सुलोचना मेरी उपकारिणी है और मै इसकी स्तुति कर रही हूँ।

देवी ने यह सत्य जब स्पष्ट किया तो जयकुमार को भी नमस्कार मत्र के प्रति गहरी आस्था हो गई। देवी ने उसको याद दिलाया कि शीलगुप्त मुनि के पास उसने भी नमस्कार मत्र सुना था लेकिन आस्था नही पकडी– उसका महत्त्व नही समझा। उसके साथी सर्पगुप्त ने भी इस मत्र को सुना था। बाद मे बिजली गिरने से उसका प्राणान्त हो गया। मर कर वह नाग जाति का देव हुआ तब कामेच्छुक बन कर वह पाकोदर नाम की नागिन के साथ रमण करने लगा। देवी ने कहा– राजकुमार, तब तुमने उसको फटकारा जिससे उस नागिन ने तुम्हारे प्रति द्वेष पकड लिया। वही नागिन व्यतरी बनी और उसने तुम्हे डुबोने की चेष्टा की। तब तुम्हारी धर्मपत्नि सुलोचना ने नमस्कार मंत्र का जाप किया जिसके कारण तुम्हारा सकट टला।

यह सुनकर जयकुमार की आस्था अटल बन गई तथा वह साधना के पथ पर प्रस्थान कर गया।

अटल आस्था चाहिये,
अन्तिम विजय आपकी होगी !

अगर आप अटल आस्था को अपना लेते है तो मान लीजिये कि अन्तिम विजय आपकी होगी। कोई बाधा नही टिकेगी जो आपको पराजित कर सके– आप को अपने विकास पथ से विचलित बना सके। नमस्कार मत्र के प्रति अटल आस्था का अर्थ है परमात्मा मे अटल आस्था होना और परमात्मा मे अटल आस्था होगी तो वह अपने ही आत्म स्वरूप के प्रति होगी। आत्मा के प्रति जो अटल आस्था होती है, वही सर्वोच्च आत्म विकास का श्रेष्ठ सम्बल है।

मै बतलाना चाहता हू कि आप भी यदि भगवान् अभिनन्दन के दर्शन करना चाहते है तो नमस्कार मत्र के प्रति अटल आस्था का सबल लेकर घनघाती कर्मो को जीत ले। आपको जब यह विजय मिल जायगी तो आपको अपने प्रभु के दर्शन भी हो जायेगे।

नोखा
१४.१०.७६

□□□

8

अमृत योग की साधना या विषयोग की ?

अभिनन्दन जिन दर्शन तरसिये
दर्शन दुर्लभ देव..........

कवि आनन्दघन जी अभिनन्दन भगवान् के दर्शन की तीव्रता को लेकर चलते हुए जीवन में आध्यात्मिक रस से ओतप्रोत थे। वे आन्तरिक शक्ति का महत्त्व समझते थे और उसी आन्तरिक महत्त्व को प्रकट करने की दृष्टि से प्रभु के स्वरूप का माध्यम लेकर भव्य जनमन में आत्म कल्याण की जिज्ञासा पैदा करना चाहते थे।

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में कुछ न कुछ तो करता ही है। सामान्यतया काया का योग कार्यरत रहता ही है और यह योग तभी कार्यरत रहता है जब मनोयोग और वचन योग भी कार्यरत रहते है। मन, वचन, काया का योग व्यापार साधारण रूप से प्रत्येक मानव का चलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस योग व्यापार की गति तो है लेकिन देखने की बात है कि उस गति की दिशा किधर है ? क्या वह दिशा अमृत योग की साधना की है अथवा विषयोग के व्यापार की ?

अमृत पीना चाहने वाला क्या विष पी लेगा ?

कवि का सकेत है कि भगवान्, मैं आपके दर्शन करना अवश्य चाहता हूँ और उस हेतु से वचन के द्वारा दर्शन-दर्शन की रट लगाता हूं, लेकिन आगे का कार्य सम्पन्न नही करता हूँ तो वह दर्शन-दर्शन की रट उस वनराज के समान हो जाती जो अपने मुंह से शब्द तो निकाल देता है, परन्तु उसकी आज्ञा का कोई प्रयोजन नही होता। वह शब्द तक ही सीमित रह जाती है। वैसे ही

भव्यजनो की प्रभु दर्शन की बात केवल मुख तक ही सीमित रह जाती है। वे यह जरूर कहते हैं कि प्रभु के दर्शन करे लेकिन प्रभु के दर्शन किस माध्यम से होते है, कौन से श्रद्धान को जीवन मे लाना पडता है– इसका वे विज्ञान नही करते है। प्रभु के दर्शन की रटन केवल शब्दो से लगाते रहने से प्रभु के दर्शन सभव नही है।

जिस पुरुष को अमृत रस का पान करने की अभिलाषा है, वह अपनी पिपासा को अमृत रस से ही शान्त करना चाहेगा। ऐसे पुरुष को कोई विष पिलाना चाहे तो क्या वह विष पी लेगा ? वह जानता है कि विष का पान करने से असह्य जलन पैदा होगी और उससे उसकी मृत्यु भी हो सकती है। यह बात तो दूर रही, लेकिन अभी जिस मनुष्य को स्वच्छ जल की प्यास है, उसको अगर समुद्र का खारा पानी पीने को दिया जाय तो क्या वह वैसा पानी पी लेगा और क्या उस पानी से उसकी प्यास बुझ सकेगी ? समुद्र के पानी से जैसे उसकी प्यास बुझती नही है, वैसे ही कोरे नाम रटन से प्रभु के दर्शन होते नही है।

प्रभु नाम स्मरण के साथ मनुष्य का पवित्र अन्तःकरण जुड जाना चाहिये। जब मन, वचन और काया प्रभु की साधना मे एकीभूत होते है तभी प्रभु के दर्शन करने की क्षमता उत्पन्न होती है। मन की पवित्रता मूल में होनी चाहिये। मन की गति तो निरन्तर चलती रहती है, लेकिन वह अधिकांशतः विपरीत दिशा मे चलती है– विषय, कषाय, मोह और माया के क्षेत्र में दौडती है। उस गति को मोड देकर प्रभु के स्वरूप-स्मरण में एकाग्र रूप से नियोजित करे, तभी अमृतमयी दिशा की ओर गमन हो सकता है– विष पीने की जलन तभी मिट सकती है। बडे-बडे महापुरुष जिन्हे जैसे ही प्रभु दर्शन की अभिलाषा जगी– अमृत पीने की प्यास लगी तो उस पिपासा को शान्त करने के लिये विष की सीमाओ से बाहर निकल गये और अमृतमयी दिशा में आगे से आगे बढते रहे। अमृत पीना चाहने वाला अमृत योग की ही साधना करेगा तथा अमृत पीकर ही अपनी पिपासा को शान्त करेगा।

अमृतमयी दिशा में भद्रबाहु स्वामी का प्रयाण

भद्रबाहु स्वामी, जिनका जैन जगत् मे बहुत बडा नाम है, प्रतिष्ठानपुर के ऋद्धि सम्पन्न निवासी थे। घर मे वैभव की बहुलता थी तथा पांचो इन्द्रियो से सम्बन्धित अद्वितीय सुख सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा मे उन्हे उपलब्ध थी। लेकिन जब वे सन्तो के सम्पर्क मे पहुँचे तो उन्हे सांसारिक नश्वरता का स्वरूप ज्ञान

हुआ और उन्हे प्रतिबोध मिला कि इस ससार के पदार्थ कितनी ही मात्रा मे क्यो न मिल जाय, पाचो इन्द्रियो के विषय भी पूर्णतया क्यो न प्राप्त होते रहे तथा देवकुमार की तरह इस शरीर को भी अमरता क्यो न मिल जाय– अन्तरात्मा की तुष्टि इन सबसे होने वाली नही है। अन्तरात्मा की तुष्टि तो आन्तरिक शक्ति के प्रकटीकरण से ही हो सकती है।

महात्मा के इस उपदेश का असर भद्रबाहु की आत्मा पर हुआ और उनमे यह जिज्ञासा पैदा हुई कि इस मनुष्य तन को यदि सार्थक बनाना है तो अमृत की योग साधना करनी चाहिये और अमृत प्राप्त करने के उद्देश्य से अमृतमयी दिशा मे प्रयाण करना चाहिये।

भद्रबाहु ने अपने छोटे भ्राता को बुलाया और सारे वैभव का परित्याग करके अमृत साधना के लिये प्रयाण करने का अपना सकल्प उसे बताया। उन्होने कहा– कुछ समय पहले मै सारी सम्पत्ति का बटवारा करना चाह रहा था और मायावी व्यवहार से अधिक सम्पत्ति ले लेने की योजना भी बना रहा था, लेकिन सन्तो के सम्पर्क से मेरी विचारधारा परिवर्तित हो गई है। मुझे अब आत्मा के विज्ञान का ज्ञान हो गया है सो तुम ही सारे वैभव को सम्हालो– मै तो अब इस प्रपंच से बहुत दूर चले जाना चाहता हूँ।

छोटे भ्राता ने उत्तर दिया– भाई साहब, आपकी तरह मै भी मायावी बना हुआ था और अधिक सम्पत्ति हडपने की चेष्टा मे था। आपका दिल सन्तो की वाणी सुनकर साफ हो गया तो अब मेरा दिल भी आप की वाणी सुनकर साफ हो गया है। अमृत की प्यास मुझे भी लग गई है। आप आगे बढ रहे हैं तो मैं भी अब पीछे न रहू। मै भी अमृतमयी दिशा मे आपके साथ ही चलना चाहता हूँ। यह सम्पत्ति पीछे की सन्तानो को सौप दें और अपने दोनो अमृत साधना के लिये चल पडे।

अमृत योग की साधना : दोनों भाइयों में अन्तर

भद्रबाहु और उनके छोटे भ्राता– दोनो दीक्षित हो गये। दोनो ने आचार्य के पास रहकर अध्ययन करते हुए शास्त्रो की गहनता प्राप्त की। भद्रवाहु स्वामी ने एक पूर्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया। भद्रबाहु का जीवन विनयशीलता, निरभिमान वृत्ति एवं सयम साधना से ओतप्रोत था। आचार्य यह देखकर आश्चर्य करते थे कि ऋद्धिशाली घर मे जन्म लेने के उपरान्त भी भद्रवाहु की जीवन चर्या मे इतनी विनम्रता और इतनी सावधानी कैसे है ? वे अमृत योग की

साधना मे दत्तचित्त बन गये थे।

स्वर्गीय आचार्य श्री फरमाया करते थे कि साधु जीवन की स्थिति यदि साधना के साथ है और वहॉ जीवन को निर्मल बनाने का प्रयास चल रहा है तो उसे महानता ही मानिये। साधु के मन मे किसी भी रूप मे अहकार नही बना रहना चाहिये। सच्ची साधना मे अहकार वृत्ति सबसे बडी बाधा होती है। अहकार के साथ-साथ अगर द्वेष की भावना भी आ गई तो समझिये कि सयम के अमृत मे विष घुल जाता है। इस स्थिति को बडे घर के रडापे जैसी भी कह सकते है। बडे घर मे कोई बहिन विधवा हो जाती है तो उसको खाने-पीने की तो कोई कमी नही रहती लेकिन सौभाग्य सुख नही मिलता। वैसे ही साधु-जीवन की पौशाक धारण करने वाला राग, द्वेष, अह और ईर्ष्या के वशीभूत हो गया, रात-दिन प्रपच मे उलझ गया तो उसको भी खाने पीने की तो कमी नही रहेगी, क्योकि समाज देता है, लेकिन संयमी जीवन के आनन्द से वह वचित हो जायगा। इसलिये सन्त कह दिया करते है कि सयम की साधना के लिये गृहस्थ के यहॉ से भोजन लाया पर सयम मे सर्वभा प्रवृत्ति नही की तो यह कहावत लागू हो जाती है–"गृहस्थ तेरा टुकडा, लम्बे-लम्बे दात। भोजन करे तो नही उखडे, नही तो काढे आत।।" अमृत योग की साधना से विलग होना साधु के लिये कतई योग्य नही कहलाता है।

साधुता की साधना मे दोनो भाइयो की गतिविधियॉ भी विचित्र हो रही थी। यद्यपि दोनो सगे भाई थे, लेकिन बडे भाई भद्रबाहु निरभिमानी वृत्ति के साथ साधना मे लगे हुए थे। वह उनकी अमृत योग की साधना थी। जानते है, अमृत योग की साधना किस प्रकार होती है ? इसके लिये विशेष यौगिक प्रक्रिया भी की जाती है। इस साधना का प्रयोग चालू होता है तो वह प्रतिक्षण चलता रहता है। बैठा हुआ है तो क्या, सोया हुआ है तो क्या– हर समय साधना सधती जाती है और वह उसी मे तन्मय बना रहता है। सदा उसकी गति चलती रहती है। भद्रबाहु स्वामी को अमृतपान की तीव्र पिपासा थी और वे इसी कारण एकाग्रता से साधना मे लीन थे।

लेकिन छोटे भ्राता की वृत्ति शास्त्रीय अध्ययन करने के साथ-साथ प्रज्ञप्ति एव सूर्य प्रज्ञप्ति की स्थिति का अध्ययन करने मे लगी। वह सोचने लगा कि इसी मे मूल सार है। साथ ही उसके मन मे अहकार वृत्ति जाग गई कि वह बहुत बडा ज्ञानी हो गया है। उसके बडे भाई का ज्ञान उसके ज्ञान के सामने कुछ भी नही है। इस अहकार के साथ उसकी लालसा पैदा हुई कि आचार्य पद उसको मिलना चाहिये। वह इस लालसा को पूरी करने मे तन्मय बन गया।

हुआ और उन्हे प्रतिबोध मिला कि इस संसार के पदार्थ कितनी ही मात्रा मे क्यो न मिल जाय, पाचो इन्द्रियो के विषय भी पूर्णतया क्यो न प्राप्त होते रहे तथा देवकुमार की तरह इस शरीर को भी अमरता क्यो न मिल जाय– अन्तरात्मा की तुष्टि इन सबसे होने वाली नही है। अन्तरात्मा की तुष्टि तो आन्तरिक शक्ति के प्रकटीकरण से ही हो सकती है।

महात्मा के इस उपदेश का असर भद्रबाहु की आत्मा पर हुआ और उनमे यह जिज्ञासा पैदा हुई कि इस मनुष्य तन को यदि सार्थक बनाना है तो अमृत की योग साधना करनी चाहिये और अमृत प्राप्त करने के उद्देश्य से अमृतमयी दिशा मे प्रयाण करना चाहिये।

भद्रबाहु ने अपने छोटे भ्राता को बुलाया और सारे वैभव का परित्याग करके अमृत साधना के लिये प्रयाण करने का अपना संकल्प उसे बताया। उन्होने कहा– कुछ समय पहले मैं सारी सम्पत्ति का बंटवारा करना चाह रहा था और मायावी व्यवहार से अधिक सम्पत्ति ले लेने की योजना भी बना रहा था, लेकिन सन्तो के सम्पर्क से मेरी विचारधारा परिवर्तित हो गई है। मुझे अब आत्मा के विज्ञान का ज्ञान हो गया है सो तुम ही सारे वैभव को सम्हालो– मै तो अब इस प्रपच से बहुत दूर चले जाना चाहता हूँ।

छोटे भ्राता ने उत्तर दिया– भाई साहब, आपकी तरह मै भी मायावी बना हुआ था और अधिक सम्पत्ति हडपने की चेष्टा मे था। आपका दिल सन्तो की वाणी सुनकर साफ हो गया तो अब मेरा दिल भी आप की वाणी सुनकर साफ हो गया है। अमृत की प्यास मुझे भी लग गई है। आप आगे बढ रहे है तो मै भी अब पीछे न रहूं। मैं भी अमृतमयी दिशा मे आपके साथ ही चलना चाहता हूँ। यह सम्पत्ति पीछे की सन्तानो को सौप दे और अपने दोनों अमृत साधना के लिये चल पडे।

अमृत योग की साधना .
दोनो भाइयों में अन्तर

भद्रबाहु और उनके छोटे भ्राता– दोनो दीक्षित हो गये। दोनो ने आचार्य के पास रहकर अध्ययन करते हुए शास्त्रो की गहनता प्राप्त की। भद्रबाहु स्वामी ने एक पूर्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया। भद्रबाहु का जीवन विनयशीलता, निरभिमान वृत्ति एव सयम साधना से ओतप्रोत था। आचार्य यह देखकर आश्चर्य करते थे कि ऋद्धिशाली घर मे जन्म लेने के उपरान्त भी भद्रबाहु की जीवन चर्या मे इतनी विनम्रता और इतनी सावधानी कैसे है ? वे अमृत योग की

साधना मे दत्तचित्त बन गये थे।

स्वर्गीय आचार्य श्री फरमाया करते थे कि साधु जीवन की स्थिति यदि साधना के साथ है और वहॉ जीवन को निर्मल बनाने का प्रयास चल रहा है तो उसे महानता ही मानिये। साधु के मन मे किसी भी रूप मे अहकार नही बना रहना चाहिये। सच्ची साधना मे अहंकार वृत्ति सबसे बडी बाधा होती है। अहकार के साथ-साथ अगर द्वेष की भावना भी आ गई तो समझिये कि सयम के अमृत मे विष घुल जाता है। इस स्थिति को बडे घर के रडापे जैसी भी कह सकते है। बडे घर मे कोई बहिन विधवा हो जाती है तो उसको खाने-पीने की तो कोई कमी नही रहती लेकिन सौभाग्य सुख नही मिलता। वैसे ही साधु-जीवन की पौशाक धारण करने वाला राग, द्वेष, अह और ईर्ष्या के वशीभूत हो गया, रात-दिन प्रपच मे उलझ गया तो उसको भी खाने पीने की तो कमी नही रहेगी, क्योकि समाज देता है, लेकिन सयमी जीवन के आनन्द से वह वचित हो जायगा। इसलिये सन्त कह दिया करते है कि सयम की साधना के लिये गृहस्थ के यहॉ से भोजन लाया पर सयम मे सर्वभा प्रवृत्ति नही की तो यह कहावत लागू हो जाती है–"गृहस्थ तेरा टुकडा, लम्बे-लम्बे दात। भोजन करे तो नही उखडे, नही तो काढे आत।।" अमृत योग की साधना से विलग होना साधु के लिये कतई योग्य नही कहलाता है।

साधुता की साधना मे दोनो भाइयो की गतिविधियॉ भी विचित्र हो रही थी। यद्यपि दोनो सगे भाई थे, लेकिन बडे भाई भद्रबाहु निरभिमानी वृत्ति के साथ साधना मे लगे हुए थे। वह उनकी अमृत योग की साधना थी। जानते है, अमृत योग की साधना किस प्रकार होती है ? इसके लिये विशेष यौगिक प्रक्रिया भी की जाती है। इस साधना का प्रयोग चालू होता है तो वह प्रतिक्षण चलता रहता है। बैठा हुआ है तो क्या, सोया हुआ है तो क्या– हर समय साधना सधती जाती है और वह उसी मे तन्मय बना रहता है। सदा उसकी गति चलती रहती है। भद्रबाहु स्वामी को अमृतपान की तीव्र पिपासा थी और वे इसी कारण एकाग्रता से साधना में लीन थे।

लेकिन छोटे भ्राता की वृत्ति शास्त्रीय अध्ययन करने के साथ-साथ प्रज्ञप्ति एव सूर्य प्रज्ञप्ति की स्थिति का अध्ययन करने मे लगी। वह सोचने लगा कि इसी मे मूल सार है। साथ ही उसके मन मे अहकार वृत्ति जाग गई कि वह बहुत बडा ज्ञानी हो गया है। उसके बडे भाई का ज्ञान उसके ज्ञान के सामने कुछ भी नही है। इस अहकार के साथ उसकी लालसा पैदा हुई कि आचार्य पद उसको मिलना चाहिये। वह इस लालसा को पूरी करने मे तन्मय बन गया।

गये अमृत योग की साधना में और पड गये विषयोग के व्यापार

आचार्य बडे विलक्षण थे। वे तटस्थ भाव से दोनो की गतिविधियो को बारीकी से देख रहे थे। दोनो की व्यवहार वृत्ति से वे दोनों के स्वभाव और जीवन को परख रहे थे। उन्होने मन ही मन निर्णय लिया कि छोटा भ्राता मुनि बना है लेकिन उसके मुनि जीवन में अमृत योग की साधना तो नही आई और विष योग की साधना आ रही है। वह अहंकार के साथ बडे भाई का तिरस्कार भी करने लगा है और अपने को आचार्य पद प्राप्त करने की लालसा मे डुबो रहा है। उन्हें दिखाई दिया कि उसका वह मुनि जीवन भी विषमय बन चुका है। उसे आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करेंगे तो तीर्थकरों के प्रतीक इस पद की गरिमा को वह नीचे ही गिरायगा– ऐसा उन्होंने अपने मन मे सोचा। उन्होने भद्रबाहु स्वामी के जीवन की उत्कृष्टता की परख की और उन्हे आचार्य पद पर प्रतिस्थापित कर दिया।

तब तो छोटे भ्राता की आग भडक उठी। वह पद उसे नही मिला और बडे भाई को दे दिया गया। यह नहीं सोचा कि आचार्य पद से क्या कोई जागीर मिलने वाली थी ? वह तो व्यवस्था वाला पद था– काटो का ताज था। वास्तव में पद की ममता न रख कर समभाव की साधना करना भी सरल नहीं होता है। गुणशीलता नहीं हो तो ऐसी ममता में उलझकर भी मनुष्य पतन की राह पर चला जाता है। छोटे भ्राता का मन भी डिग गया कि वह जो चाहता था– सम्मान उसे मिला नहीं, इसलिये पुनः गृहस्थ बन जाय ताकि वहाँ पहुँचकर सम्मान प्राप्त कर सके। उसकी विषयोग की गति को देखिये कि बारह वर्ष की साधुता की साधना के बाद वह पुनः गृहस्थ बन गया। गये थे अमृत योग की साधना मे और वापिस पड गये विष योग के ही व्यापार में।

गृहस्थ बन कर उसने यह प्रचार करना शुरू किया कि वह घर बार छोड कर निकला था तो सीधा सूर्य लोक में पहुँच गया था, वहाँ उसने नक्षत्रो की गतिविधियो का अध्ययन एवं अवलोकन किया जिससे वह मुहूर्त निकालने तथा भविष्यफल बताने में विशेषज्ञ हो गया है। इस प्रचार से भद्रिकजन उसकी ओर आकर्षित होने लगे। दस बातों में से दो बात सही निकल जाती– इस प्रकार उसने अपनी प्रतिष्ठा जमानी प्रारंभ की। प्रतिष्ठानपुर का नरेश भी उसकी विद्या से प्रभावित हुआ तथा उसने उसको राजपुरोहित का पद दे दिया। अब तो उसका अहकार पुन. भडका कि वह भी पदधारी हो गया है। तब उसके मन मे

विषयोग का व्यापार जटिल बनने लगा।

विष पर अमृत की विजय . सत्य की सदा जय

छोटा भ्राता राजपुरोहित बन जाने के बाद भद्रबाहु स्वामी की निन्दा करने लगा तथा उनके भक्तो के साथ मे भी द्वेष रखने लगा। सयोग से विहार करते हुए भद्रबाहु स्वामी प्रतिष्ठानपुर पधारे। वे धर्मस्थान मे ठहर गये। जन समुदाय उनके दर्शनो के लिये आने लगा। नरेश भी दर्शनार्थ वहाँ पहुँचे। आचार्य भद्रबाहु का ओज, उनकी निर्मलता, उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा वास्तविक सन्त जीवन को देखकर वे श्रद्धावनत हो गये।

धर्मस्थान मे नरेश बैठे हुए थे तभी उन्हे सूचना मिली कि राजकुमार का जन्म हुआ है। बडी खुशी की बात थी, राजा आनन्द विभोर हो गये। सूचना देने वाले को उन्होने बख्शीश दी तथा साथ मे आये राजपुरोहित को भी सम्मानित किया। राजा को राजकुमार जन्म की बधाई देने वालो का ताता लग गया। वे वहाँ से राजमहलो मे पहुँचे और राजकुमार का जन्मोत्सव मनाया जाने लगा। प्रसन्नता के क्षणो के बीच मे राजपुरोहित ने विष उगला– महाराज, ऐसे प्रसन्नता के अवसर पर सभी ने आपको बधाई दी, लेकिन भद्रबाहु ने बधाई का एक शब्द भी नही कहा, बल्कि चुप्पी साध कर बैठ गया। साधु आचार से अपरिचित राजा को भी भद्रबाहु स्वामी का व्यवहार अखर गया, फिर भी वह उत्तेजित नही हुआ।

दूसरे दिन जब भद्रबाहु स्वामी के दर्शन करने के लिये राजा गये तो शान्त भाव से उन्होने आचार्य से कह दिया महात्मन् राजकुमार के जन्म पर सभी ने मुझ को बधाई दी, आपने कुछ भी नही कहा– इसका क्या कारण था ? आचार्य ने स्वाभाविक रूप मे कहा– राजन् ससार का कार्य चलता रहता है, इसमे बधाई देने का क्या प्रसग है ? आज जन्मोत्सव मनाया जाता है, सप्ताह भर बाद उसी का शोक मनाया जा सकता है। इस सासारिकता से हम साधु लोग दूर ही रहते है। आचार्य ने तो वस्तु स्वरूप समझाने की दृष्टि से बात कही थी, लेकिन राजा यह सुनकर सशकित हो उठा। उसने पूछा– भगवान् उत्सव और बधाई के साथ शोक की बात कैसे आ गई ? महात्मा ने कहा– ससार की स्थिति ऐसी ही होती है।

यह सुनकर राजपुरोहित ने ललकार कर कहा– राजन्, मै गणित और ज्योतिष का विद्वान् हूँ– ये इस गहन विषय को क्या समझेगे ? राजकुमार की कुडली मैने समस्त गणना करके बनाई है। वे कला प्रवीण एव कुशल शासक

बन कर सौ वर्ष तक राज्य करेंगे। राजा को कुछ ऐसी शका बैठ गई कि उन्होने राजपुरोहित की बात तो सुनी ही नही, फिर वे भद्रबाहु स्वामी से बोले– भगवन् आपके मुह से सप्ताह भर की यह बात क्यो निकली है ? आचार्य ने कहा– ससार की स्थिति को समझने की दृष्टि से निकली है। राजा को सन्तोष नही हुआ, उसने सही बात बताने की हठ पकड ली। आचार्य ने अन्ततोगत्वा कहा– राजन्, आप अपने जीवन मे समभाव रखें। आज आप उत्सव मना रहे है– सप्ताह भर बाद बिलाव के मुह से बच्चे की घात हो सकती है।

राजा असमंजस मे पडा कि महात्मा की बात मानू या राजपुरोहित की बात मानू ? उसने राजकुमार के कक्ष पर ऐसा पहरा लगा दिया कि बिलाव कही से घुस ही नही सके। योग की बात कि सातवे दिन धायमाता राजकुमार को गोद मे लेकर दरवाजे के पास बैठी हुई थी कि अचानक किवाड की भोगल सीधी राजकुमार पर गिरी और उसकी वही मृत्यु हो गई। यह बात राजा तक पहुँची तो वे चौक उठे। उन्होने आकर भोगल को देखी तो उसका जो किनारा राजकुमार पर गिरा था उस पर बिलाव का चित्र खुदा हुआ था। राजा को महात्मा पर प्रगाढ श्रद्धा हो आई। वे सोचने लगे कि जिसे राजपुरोहित बना कर उन्होने विद्वान् समझा था उसकी बात कितनी झूठी निकली ?

राजा आचार्य भद्रबाहु के चरणो मे लोट गये और पूछने लगे– भगवन्, मुझे अमृत पीने की प्यास लग गई है। इस ससार मे अमृत योग नही मिलता। मै सप्ताह भर पहले हर्ष मना रहा था और आज मुझे शोक मनाना पडा। अब मुझे वह मार्ग बताइये जिस पर चलकर मै अमृत योग की साधना कर सकू।

यह छोटा भ्राता के विष पर भद्रबाहु स्वामी के अमृत की विजय थी। सत्य की सदा जय होती है।

अमृत की वर्षा मे फिर विष की जलन क्यो न मिटती ?

लोकनिन्दा से छोटे भ्राता के मन को बडा धक्का लगा और वह बीमार हो गया। एक दिन छोटे भ्राता का लडका भद्रबाहु स्वामी के पास आया और बोला– आचार्य देव, मेरे पिताजी बहुत बीमार है। आप कृपा करके उन्हे दर्शन देने पधारे। उन्होने निवेदन कराया है। आचार्य तो अमृतमय हो चुके थे। वे तुरन्त उठ कर चल दिये। उन्होने छोटे भ्राता को दर्शन दिये, मागलिक सुनाई और पूछा– क्या बात हो गई है ? छोटे भ्राता ने कहा शास्त्रो पर से मेरी श्रद्धा हट गई है। मै चन्द्र प्रज्ञप्ति और सूर्य प्रज्ञप्ति को सर्वथा सच मानकर चल रहा था,

मेरी भविष्यवाणी झूठी निकल जाने से मुझे बहुत दु ख हुआ है। तब आचार्य ने प्रतिबोध दिया– शास्त्रो के सच झूठ होने का सवाल नही है, यह तुम्हारी मतिभ्रमता है। वे ही शास्त्र मैने भी पढे है। तुम शास्त्र पढकर अभिमान और ईर्ष्या मे पड गये तो तुम्हारे सारे जीवन मे विष व्याप्त हो गया। विष की जलन से ही तुम पीडा पा रहे हो।

आचार्य की अमृत वर्षा मे फिर उसकी विष की जलन क्यो न मिटती ? छोटे भ्राता को बोध मिला और वह पुन अपने भाई की शरण मे जाकर अमृत योग की साधना करने लगा। लेकिन अमृत योग की साधना सफल तब होती है जब अन्दर का विष दूर होता है। ऊपर से राग द्वेष हटता हुआ दीखता है लेकिन वह अन्दर के कोनो मे इधर उधर लगा हुआ रह जाता है तो उतना सा विष भी हानि पहुँचाये बिना नही रहता। छोटे भ्राता की आयुष्य समाप्ति की स्थिति आ गई और जो अन्दर कुछ विष रह गया था उसके कुप्रभाव से वह व्यन्तर जाति का देव हो गया। उसने ज्ञान मे देखा तो विदित हुआ कि वह पहले जन्म मे साधु था लेकिन अपनी विषमय भावना से उसे इस योनि मे जन्म लेना पडा। यह जानकर वह अधिक उत्तेजित हो गया और भद्रबाहु स्वामी के श्रावको को सताने लगा। श्रावक तग आकर उनके पास गये तो उन्होने उनको भगवान् के वचनो पर पूर्ण आस्था रखते हुए समभाव धारण करने का आग्रह किया। उन्हे सकट के समय कुछ गाथाएँ बोलते रहने को कहा जिससे व्यन्तर का असर मिट गया। अन्त मे व्यन्तर भी सारी स्थिति को समझ कर पश्चाताप करने लगा और उसने अपने मन का सारा विष बाहर निकाल फैका। अमृत की वर्षा मे वह कब तक विषमय बना रहता ?

आप अमृत योग की साधना करेंगे या विषयोग के व्यापार मे पडे रहेगे ?

जगत् के प्राणियो को मोटे तौर पर दो प्रकार की श्रेणियो मे बाट सकते है। एक तो वह श्रेणी जिस मे प्राणी अमृत योग की साधना के प्रति प्रभावित होते है तथा न्यूनाधिक रूप से उस साधना मे प्रवृत्त होते है। दूसरी वह श्रेणी जिसमे प्राणी विष योग के व्यापार मे उलझे रहते है इतने मूर्छा भाव से कि वहॉ से हटने की उनमे जागृति भी बडी कठिनाई से आती है। विषयोग के व्यापार को छोडकर अमृत योग के साधना-पथ पर जो चलता है, वह महान् होता है, लेकिन महानता यही समाप्त नही होती है। वह उससे भी महान् होता है जो विष-प्रहार के उत्तर मे भी अमृत की वर्षा करता है।

सोचिये कि आप भी अमृत योग की साधना करना चाहेगे अथवा विषयोग के व्यापार में ही पडे रहेंगे ? इस संसार मे परिभ्रमण करते हुए इस आत्मा ने बहुत विष पिया है और बहुत विष बिखेरा है। यह विष की जलन से सतप्त है, फिर भी अमृत की ओर यह नही मुड रही है— इसी का आश्चर्य है। इस आत्मा को अब अमृत की आवश्यकता है। अमृत की उग्र प्यास जगाइये ताकि यह आत्मा विष के योग व्यापार से अलग हट कर अमृत योग की साधना की दिशा में गति कर सके। अन्तिम लक्ष्य यही बने कि आत्मा अमृतमय हो जाय।

नोखा
१६.१०.७६

❑❑❑

9

आज्ञा के प्रति अर्पण की भावना

सुमति चरण रज आतम अर्पणा,
दर्पण जेम अविकार–सुज्ञानी,
मति तर्पण बहु सम्मत जाणिये,
परिसर्पण सुविचार–सुज्ञानी

भव्य आत्माओ के लिये सुन्दर, प्रशस्त तथा सम्यक् अवसर उपस्थित हुआ है। जिन आत्माओ को सदा सर्वदा सुखी बनना है, वर्तमान जीवन को सफल बनाना है एव परलोक को भी उज्ज्वलता के साथ देखना है तो कवि का सकेत है कि सुमतिनाथ भगवान् के चरणो मे आत्मा का अर्पण कर दिया जाय। जहाँ अर्पणा का प्रसग है, वहाँ अपने आपको समर्पित करने का अवसर है।

जिस आत्मा ने सुमतिनाथ भगवान् के चरणो मे अपनी अहवृत्ति का सर्वथाभावेन विसर्जन कर दिया है तथा पूर्ण रूप से भगवान् के चरणो का अनुसरण आरभ कर दिया है, वह जीवन की परम सिद्धियो को प्राप्त कर सकती है। आज्ञा के प्रति अर्पण की भावना पूरी सच्चाई के साथ जिस आत्मा मे जागृत हो जाती है, वह उस आज्ञा पालन के आश्रय से ही अपना उद्धार सम्पादित कर लेती है।

भगवान् के जो चरण है वे ही भगवान् की आज्ञा है

कवि ने भगवान् के चरणो का सकेत दिया है। भगवान् के इन चरणो का अभिप्राय किन्ही शरीर के अग रूप चमडे के चरणो से नही है। उपमा चरण कमल से दी है– वे चरण है भगवान् के आचरण के चरण। चरण का अर्थ होता है आचरण–चलना। भगवान् ने स्वय ने अपने जीवन मे जो आचरित किया तथा

उस ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर उन्होने संसार के प्राणियो के कल्याण के लिये जो आचरण का मार्ग प्रशस्त किया, वह मार्ग रूप उनकी देशना ही उनकी आज्ञा कहलाती है। भगवान् के इस रूप मे जो चरण है, उन्हे ही भगवान् की आज्ञा कह सकते है।

भगवान् के चरण आचरण के हैं और वे दो है। एक श्रुत चरण तथा दूसरा चारित्र चरण। शास्त्रीय परिभाषा मे "कुयचेव चरितचेव" कहा गया है। श्रुत धर्म और चारित्र धर्म ही भगवान् के दोनो चरण है। ये दोनो चरण स्वच्छ दर्पण के समान अविकार है। दर्पण याने आईने मे इन्सान अपनी आकृति देखता है और उसमे स्पष्ट आकृति दिखाई देती है क्योकि उसमे स्वच्छता एव निर्मलता है– धब्बे या मलिनता नही है। वैसे ही महावीर प्रभु एव अन्य वीतराग देवो द्वारा उपदेशित जो श्रुत धर्म एव चारित्र धर्म है, वही यथार्थ अर्थ मे सत्य है। उसमे निर्मलता दर्पण से भी बढकर है। दर्पण मे तो कभी भी भ्रान्ति हो सकती है लेकिन सही ज्ञान एव सही श्रद्धान् के बीच सही आचरण मे भ्रान्ति होने का प्रसग नही आता है। इसलिये जो भव्य आत्माएँ अपना कल्याण करना चाहती है, उन्हे भगवान् के इन चरणो के प्रति अपने आपको समर्पित कर देना चाहिये– श्रुत धर्म एव चारित्र धर्म को अपने आचरण मे रमा लेना चाहिये।

आत्मा की अर्पणा ऐसी बन जानी चाहिये कि आत्म स्वरूप श्रुत एव चारित्र धर्म रूप बन जाय दोनो मे कोई अलगाव ही न रहे। आत्मा को श्रुत धर्म एवं चारित्र धर्ममय बना लेना है– अलग नही रखना है। श्रुत धर्म और चारित्र धर्म से आत्मा को विलग कर दी तो उस आत्मा का समर्पण ही सही रूप मे नही समझा जायगा।

शास्त्रो मे सकेत दिया जाता है कि वीतराग देवों की आज्ञा ही धर्म है। वीतराग देवो की आज्ञाओ की आराधना करना– इन आज्ञाओ के प्रति तन, मन, वचन आदि सर्वस्व का समर्पण कर देना– यही धर्म है। जिधर प्रचु का सकेत हो उधर ही गमन करना– इस प्रकार की भावना ही जीवन को उज्ज्वलतम बनाने वाली होती है। वैसे अत्यन्त भाग्यशाली आत्माएँ अपने जीवन मे यह चरण– आदर्श उपस्थित करती है।

आज्ञा धर्म की उत्कृष्टता
चरण आदर्श की उपस्थिति

आज्ञा को ही धर्म मानकर जब उत्कृष्टता के साथ उसका पालन किया जाता है, तब ही यह कहा जा सकता है कि वहाँ चरण– आदर्श की उपस्थिति हुई है। गौतम सरीखे गणधर जो प्रभु महावीर के प्रथम शिष्य तथा उच्च कोटि

के ज्ञानी थे, फिर भी उनकी दिशा, उनका समग्र व्यवहार प्रभु-आज्ञा के प्रति समर्पित होकर चलता था। इसीलिये गौतम स्वामी को हर समय याद किया जाता है और प्रत्येक उपदेश भी उनके नाम से हुआ है। आज्ञा का पालन करना सरल कार्य नही होता है। जब तक व्यक्ति अपने आपको बचा कर चलता है तब तक आज्ञा का पालन नही होता है। अधिकतर रूप से व्यक्ति हठवादिता से उलझा हुआ रहता है और यह कहते हुए भी कि आपकी बात सही और सच्ची है– सही बात को मानने के लिये तैयार नही होता है। कहावत है कि पचो की बात सिर माथे पर– मगर परनाला तो यही पडेगा। इस मे आज्ञा के प्रति समर्पण नही है– यह तो अपनी बात को ऊपर रखनी है।

ऐसे व्यक्ति भले ही भगवान् की आज्ञा से अपने आपको बचाले लेकिन ससार के थपेडो से वे बच नही पायेगे– कर्मो की आधी से विलग नही हो पायेगे। कर्मो के झझावात उनको घेरेगे और उनमे उनकी कैसी दुरावस्था बनेगी– यह ज्ञानियो के ज्ञान की बात है। जिस किसी भी क्षेत्र मे आज्ञा के अन्दर यदि जीवन की अर्पणा है तो उस क्षेत्र मे वह जीवन भव्य रूप धारण करेगा ही। यदि वह परिवार का क्षेत्र है तथा वहॉ पर परिवार के मुखिया की आज्ञा परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने मन-मस्तिष्क मे रखकर चलता है तो वह परिवार भी आदर्श परिवार कहलाता है। जब वे सोच समझकर आज्ञा देते है तो पिता की आज्ञा परिवार के प्रत्येक सदस्य के मन-मस्तिष्क मे बैठ जाती है तो वैसी आज्ञा परिवार की प्रतिष्ठा को कभी नीची नही बनाती है, बल्कि परिवार के गौरव मे चार चाद ही लगाती है।

पिताजी कहते है– ऐसा करो और पुत्र कहता है कि ऐसा नही, ऐसा होगा तो वह पिता की आज्ञा का पालन नही होगा– वहॉ तो उल्टी गगा बहेगी। वैसा पुत्र वास्तव मे धर्म करणी नही कर रहा है बल्कि अनुशासन की स्थिति खो कर चल रहा है। ऐसे मे उसके जीवन का मूल्य घट जाता है। वैसा ही सामाजिक दृष्टिकोण है। राजकीय परिस्थितियो मे भी ऐसी ही अवस्था चलती है। अनुशासनहीनता कही भी सुखद नही होती। अनुशासित होने से ही सर्वत्र जीवन का विकास होता है।

वस्तुत अनुशासन का अर्थ ही आज्ञा धर्म होता है। किसी भी स्वस्थ शासन के 'अनु' याने पीछे-पीछे चलना ही अनुशासन कहलाता है। शर्त यह है कि वह शासन स्व मे स्थ होना चाहिये अर्थात् आत्म प्रेरित होना है। आत्म प्रेरित शासन वही होता है जो सर्वात्म-कल्याण का अनुमोदक होता है। जो अनुशासन मे चलता है, वह आज्ञा धर्म का अनुकरण करता है तथा आज्ञा धर्म का निष्ठापूर्वक अनुकरण करने वाला ही चरण– आदर्श याने आचरण का आदर्श प्रस्तुत कर सकता है।

आज्ञा पालन का दिव्य आदर्श
राजकुमार कुणाल की आंखे

प्राचीन काल की ऐतिहासिक स्थिति से भी यदि देखा जाय तो राजकीय क्षेत्र मे भी आज्ञा पालन के दिव्य आदर्श उपस्थित किये गये थे जिनकी छाया भी आधुनिक युग मे कही ढूंढे तो कठिनता से ही दिखाई देगी।

पाटलीपुत्र के सम्राट या दूसरे शब्दो मे कहू तो मगध देश के महाराजा अशोक अपने प्रकोष्ठ मे बैठे हुए अपने पुत्र को पत्र लिख रहे थे। पिता का चिन्तन था कि उनका पुत्र सब दृष्टि से योग्य व सम्पन्न है तथा आठ वर्ष का हो जाने से उसे तुरन्त अध्ययन शुरू कर देना चाहिये। पत्र मे लिखा था– ''त्वया अधितव्यमिति ममाज्ञा चरेम विधेया अर्थात् तुम अध्ययन करो–यह मेरी आज्ञा है जिस पर तुम चलो। पत्र मे इतना लिखा और अशोक को कोई आवश्यक काम आ जाने से वे उस पत्र को उतना ही छोडकर चले गये। इतने मे अशोक की द्वितीय पत्नि त्रिष्यरक्षिका वहॉ आ गई। महाराज को न पाकर लौटने ही वाली थी कि उसकी दृष्टि पत्र पर पड गई। त्रिष्यरक्षिका कुणाल की सौतेली माता थी। विरली ही कोई सौतेली माता होती है जो सौत के पुत्र को अपने पुत्र के तुल्य माने। त्रिष्यरक्षिका के मन मे भी कुणाल के प्रति डाह का भाव था। वह सोचती थी कि कुणाल के रहने से उसका पुत्र राज्य प्राप्त नही कर सकेगा। उसमे दुर्भावना जागी और उसने अपने मन की पूरी करने के लिये अपने आखो के काजल से एक शलाका भरी और पत्र के ''अधितव्य' शब्द के 'अ' पर एक बिन्दी लगा दी माने कि सारे वाक्य का अर्थ ही बदल गया। वाक्य बन गया–

''अधितव्यामिति ममाज्ञा चरेम विधेया'' अर्थात् तुम अपने आपको अधा बना लो– यह मेरी आज्ञा है जिस पर तुम चलो। 'अधितव्य' और 'अधितव्य' का अर्थ एकदम विपरीत हो गया। त्रिष्यरक्षिका यह बिन्दी लगाकर चली गई।

अशोक पुन उस प्रकोष्ठ मे आये और उन्होने बिना पुन पढे ही पत्र को समेट कर कुणाल को पहुँचा देने के लिये अनुचर को दे दिया। अनुचर पत्र लेकर कुणाल के पास अवन्तिका चला गया। स्वय कुणाल के हाथ मे उसने महाराज का पत्र दिया। कुणाल ने उसे पढा– कुणाल के सरक्षक ने भी उसे पढा। वे समझ नही सके कि यह क्या बात है ? सरक्षक ने अनुचर से पूछा– यह पत्र तुमको किसने दिया है ? अनुचर ने कहा– स्वय अशोक महाराज ने। सरक्षक ने सारी जानकारी अनुचर से ली। कुणाल बच्चा ही था, फिर भी सारे

बात ध्यान से सुन रहा था। सब सुनकर उसने निश्चयपूर्वक कहा– कैसी भी हो पिता की आज्ञा मेरे लिए शिरोधार्य है। यदि पिता चाहते है तो ये नेत्र क्या, सारा जीवन भी उनके चरणो मे समर्पित करने को मै तैयार हूँ। आज्ञा मेरा धर्म है।

अनुचर ने वापिस जाकर अशोक से उस आज्ञा की पुष्टि करनी चाही तो कुणाल ने रोक दिया। उसने कहा– यह मेरी कायरता होगी। पिता की आज्ञा मुझे सर्वथा मान्य है। यह कहकर उसने बिना तनिक भी दुर्बलता लाये तीक्ष्ण शस्त्र को अपने ही हाथ से अपनी दोनो आखो मे भौक दिया। पिता के आज्ञा पत्र से कुणाल अधा हो गया। राजकुमार कुणाल की आखें आज्ञा पालन की दिव्य आखे बन गई।

आज्ञा को धर्म मानने वाले किसी भी स्थिति मे हिचकिचाते नही हैं

यह तो एक परिवार का रूपक है कि एक पिता के लिखने को उनकी आज्ञा मानकर पुत्र ने तनिक भी हिचकिचाहट नही दिखाई। यह भी नही सोचा कि बिना किसी कारण के पिता ने ऐसी क्रूर आज्ञा क्यो दी ? यह भी नही चाहा कि उस आज्ञा की पुष्टि ही कर ली जाय। उस आज्ञा मे भ्रान्ति हुई थी– सौतेली मॉ ने धूर्तता कर दी थी– तब भी कुणाल के मन मे कोई शका पैदा नही हुई। उसने तो उसे पिता की आज्ञा मानकर ही बेहिचक पूरी कर दी। वास्तव मे आज्ञा को धर्म मानने वाले किसी भी स्थिति मे हिचकिचाते नही है।

क्या आज के समय मे है कोई कुल को विभूषित करने वाला ऐसा पुत्र जो पिता की आज्ञा को यथावत् समझकर चलता हो ? केवल गृहस्थाश्रम की स्थिति का ही प्रसग नही है। यह प्रसग आगे बढता है। यह राजनीति की स्थिति मे व्याप्त होता हुआ धर्म नीति मे प्रवेश करता है। जहॉ प्रभु की आज्ञा की निष्ठापूर्वक आराधना होती है, वहॉ साधक अपने आपको सम्पूर्ण तथा समर्पित करके चलता है। उसमे कोई ननु नच नही करता। क्या है– यह भी प्रश्न कभी नही उठाता। गौतम गणधर का ही उदाहरण सामने है। प्रभु के निर्वाण का प्रसग और प्रभु की आज्ञा हुई कि देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देकर आओ। उस समय गौतम गणधर कुछ कह सकते थे कि भगवन् आपके निर्वाण की अवस्था समीप आ गई है, मुझे अपने पास मे ही रखिये। लेकिन चू शब्द भी नही कहा और यथाज्ञा कह कर चले गये।

गौतम गणधर की बात क्या कहू, स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज साहब की जीवन गाथा भी अतीव गौरवशाली है। मेरी दीक्षा को ढाई

वर्ष बीते होगे– फलौदी चातुर्मास उठाकर बीकानेर पधार रहे थे। तब सरदारशहर मे चातुर्मास करने का प्रसग उपस्थित हुआ। आषाढ के दिन थे– लगभग आधा आषाढ बीतने आ गया था। सरदारशहर के लोग तिलमिला रहे थे। आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा एव उस समय उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी म सा दोनो मौजूद थे। सभी सन्त सतियो से पूछा गया। किसी ने कहा– मेरे अमुक तकलीफ है तो किसी ने कहा– गर्मी सहन नही हो सकेगी। आचार्य श्री की दृष्टि उपाचार्य श्री पर पडी तो वे हाथ जोड कर उठ खडे हुए और कहने लगे– क्या आज्ञा है ? आचार्य श्री ने कहा– क्या बताऊ दिन भी कम है और गर्मी भी बहुत है फिर भी रेगिस्तान मे चलकर सरदारशहर चातुर्मास करना है। उन्होने यही उत्तर दिया– जैसी आपकी आज्ञा। आचार्य श्री ने पूछा– आप कैसे जायेगे ? तो उपाचार्य श्री ने कहा– आपकी आज्ञा है तो सब हो जायगा। वह दृश्य बीकानेर, भीनासर, गंगाशहर वालो के लिये कितना कुछ विलक्षण था। मेरे तो कुछ तकलीफ थी सो मै तो सीढीयो से नीचे उतर कर बाहर भी पहुँचाने नही जा सका, लेकिन लोगो के मुह से सुना कि उपाचार्य श्री की वह आचार्य की आज्ञा की आराधना राम वन गमन जैसा दृश्य उपस्थित कर गई थी। आज्ञा पालन का दृश्य उन महापुरुषो ने उपस्थित किया जिसकी गरिमा स्मृति पटल पर आज भी है।

आज्ञा पालन तभी संभव, जब आत्मा अर्पित हो जाती है

आज्ञा का पालन तभी सभव बनता है जब आज्ञा के प्रति आत्मा मे समग्र रूप से अर्पणा का भाव जागृत बन जाता है। आज्ञा का पालन ही मेरे लिये सर्वोच्च है– यह अनुभाव तीव्रतम बन जाना चाहिये। एक सैनिक को यह देखने का कभी प्रशिक्षण नही मिलता है कि दी हुई आज्ञा कैसी है ? जैसी भी आज्ञा है, उसको उसका पालन करना होता है। इसे ही सैनिक अनुशासन कहते है। प्रभु की आज्ञा के सम्बन्ध मे आत्मा पर भी ऐसा ही सैनिक अनुशासन लागू किया जाना चाहिये। आध्यात्मिक क्षेत्र मे तो आज्ञा का अनुशासन पूर्ण रूप से स्वैच्छिक होता है और जो इस दिशा मे जीवन का समर्पण करता है, वह अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करता है।

इस दृष्टि कोण से वर्तमान स्थिति मे आज के जीवन को आज्ञा पालन के सदर्भ से प्रभु-आज्ञा के दर्पण मे देखने की आवश्यकता है। क्या अपनी आत्मा मे अर्पण का वह उच्च अनुभाव पैदा हुआ है जिसके बल पर आज्ञा का आस्थापूर्वक पालन सभव बनता है ? मै आपसे कह रहा था कुणाल की बात।

उस आठ वर्ष के बच्चे ने पिता की आज्ञा को मानकर अपने नेत्रो को समर्पित कर दिये तथा तत्क्षण वहॉ से निकल पडा। इस दृश्य को देखकर अनुचर पुन अशोक के पास पहुॅचा। तब उसने सारी हकीकत बयान की तो अशोक के मन मे उथल-पुथल मच गई। ऐसी आज्ञा किस ने लिख दी ? यह बिन्दी किसने लगा दी ? एक बिन्दी के लग जाने से अर्थ का अनर्थ हो गया। फिर अशोक ने कुणाल की काफी खोज करवाई लेकिन कुणाल का पता नही चला।

नेत्रहीन होने पर भी कुणाल की गुणशीलता से प्रभावित होकर एक सगीतज्ञ ने उसका पालन पोषण किया, उसको गायन विद्या मे प्रवीण बना दिया तथा अपनी पुत्री के साथ उसका विवाह भी कर दिया। तब गधर्व के नाम से कुणाल प्रसिद्ध हो गया। वह गायन कला मे इतना प्रवीण हो गया कि उसके गाते रहने पर सुनने वाला जन समुदाय मुग्ध होकर झूमता रहता था। कुणाल को पुत्र जन्म हुआ तो उस ने विचार किया कि इसके लिये कुछ धन का सचय भी करना चाहिये। वह वहॉ से परदेश मे निकल पडा।

सयोग ऐसा बना कि न चाहते हुए भी वह पाटलीपुत्र पहुॅच गया। सारे नगर मे गधर्व के गायन की धूम मच गई। बात अशोक तक भी पहुॅची, उस ने भी गधर्व का गायन सुनने की इच्छा व्यक्त की। राजकीय अनुचर गधर्व के पास पहुॅचे तथा उसे अशोक की इच्छा कह सुनाई। उसने अपनी शर्त बताई कि वह अशोक महाराज के सामने बैठकर नही गा सकेगा– पर्दे के पीछे बैठकर गाएगा। ऐसा ही हुआ। गधर्व पर्दे की आड मे बैठ गया और राज्य सभा खचाखच भर गई। सभी यथास्थान बैठे थे। गधर्व की गायन कला का निर्झर जब प्रवाहित होने लगा तो सभी उसमे ऐसे बह गये जैसे सभी अनिर्वचनीय आनन्द से सरोबार हो गये।

महाराज अशोक बहुत ही प्रसन्न हुए। हर्षातिरके मे बोले– गधर्व, तुम कौन हो ? धन्य हो तुम । जो तुम मागो, वह मै दूगा । उस गधर्व रूपी कुणाल ने कहा– "प्रपौत्र चन्द्रगुप्तस्य, पौत्र बिन्दुसारस्य, पुत्र अशोकस्य च"। अशोक भावावेश मे अपने सिहासन से उठ खडे हुए, बोले– क्या कहा गधर्व ? तुम ने मुझ सहित मेरे पूर्वजो से क्या सम्बन्ध बताया ? फिर से कहो। तब शान्त स्वर सुनाई दिया– मै आपका ही पुत्र कुणाल हूॅ। आपकी आज्ञा से ही मै यहॉ उपस्थित हुआ हूॅ और आपकी आज्ञा से ही मागता हूॅ कि आप मुझे काकणी दे। यह सुनते ही अशोक विह्वल हो उठे–कुणाल को अपनी बाहो मे भर लेने के लिये पर्दे के पीछे गये और उस नेत्रहीन लेकिन परम गुणशील कुणाल को देखकर उनके नेत्र झर-झर आसू बहाने लगे। अशोक बोले– कुणाल, जैसी भी मिली, तुमने मेरी आज्ञा का पालन करके एक दिव्य आदर्श उपस्थित किया है। यह तुम्हारे साथ बालक कौन है ? कुणाल ने कहा– पिताजी, आपका पौत्र। अशोक

ने उसे गोद मे उठा लिया और घोषणा की कि यह मेरा युवराज है।

आत्मा समग्र रूप से आज्ञा के प्रति अर्पित हो जाती है, तभी आज्ञा का पालन होता है लेकिन जब आज्ञा का पालन होता है तो उसका सुफल भी सामने आकर रहता है।

प्रभु के चरणों मे अर्पित करेगे अपनी आत्मा को ?

कुणाल की यह घटना तो एक पारिवारिक घटना है। इस आज्ञा पालन की महिमा आध्यात्मिक जगत् मे अनूठी ही होती है। क्या आप भी चाहते हैं कि भगवान् सुमतिनाथ की आज्ञाओ का हृदय से पालन करे ? प्रभु के चरणो मे अर्पित कर सकेगे इसके लिये अपनी आत्मा को ? समझी है आपने आत्मार्पण की अनुभूति तथा आज्ञा पालन की एकनिष्ठ तन्मयता ?

प्रभु की आज्ञा को सर्वोच्च धर्म मानकर चलिये। वीतराग देवो ने जगत् के कल्याण का जो मार्ग दिखाया है नि शक होकर उस पर गति कीजिये– उसको सर्वस्व मानिये । अपनी आत्मा को समग्र भाव से उस मार्ग पर समर्पित कर दीजिये। जो आज्ञा से बच कर चलना चाहते है, वे अपने अन्दर को टटोले तो पता लग जायगा कि उनकी आत्मा मे आवश्यक रूप से अर्पणा का अनुभाव जागृत नही हुआ है। उनका अन्त करण संसार की मोह माया मे उलझा हुआ है। वे अभी भी शरीर, परिवार, धन सम्पत्ति, मकान हवेली आदि की ममता मे अडे हुए है। उस उलझन से निकलने पर ही प्रभु के चरणो मे पहुँचा जा सकेगा– प्रभु का चरण– आदर्श उपस्थित किया जा सकेगा।

जिस दिन यह भावना प्रबल बनेगी कि प्रभु की आज्ञा ही ज्ञान, दर्शन एव चारित्र्य को आराधना की आज्ञा है– अपनी आत्मा के उद्धार तथा जगत् के समस्त प्राणियो को आत्मीय भाव मे लाने की आज्ञा है तथा इसी आज्ञा से मोक्ष प्राप्त हो सकेगा तो उस दिन यह आत्मा पूर्ण समर्पण के भाव से अनुरजित हो उठेगी। तब उस आज्ञा के अनुसरण मे वह अपने सारे जीवन को अर्पित कर देगी। आत्मा का सकल्प जगेगा, पुरुषार्थ उठेगा तो समर्पण के भाव से साधना कर्मठ बन जायगी। वह आत्मा फिर ससार के कल्याण के लिये भी सक्षम हो जायगी। तीर्थकरो व त्यागियों के हृदय मे समाज के प्रति अर्पणा पैदा होती है तभी वे जगत् का उपकार करते है। अत आज्ञा के प्रति अर्पण की भावना सर्वोद्धारक होती है।

नोखा

१७.१०.७६



10

आत्मा : बाहर से अन्दर, अन्दर से परम

सुमति चरण रज
त्रिविधि सकल तनुधर गत आतम्
बहिरातम धुरि भेद, सुज्ञानी,
बीजो अन्तर आतम तीसरो
परमातम अविच्छेद, सुज्ञानी

सुमतिनाथ भगवान् के गुणगान की वेला मे स्वय की मति को सुव्यवस्थित बना लेनी चाहिये । श्री सुमतिनाथ भगवान् के चरणो मे जिसने अपनी आत्मा की अर्पणा की है, वह ससार के समग्र स्वरूप को अर्पण रूप मे बना लेता है। ऐसा व्यक्ति अपनी आत्मा को भी उन्नति पथ पर अग्रगामी बना लेता है।

आत्मा द्रव्य रूप से एक सी रहती है, लेकिन पर्याय रूप मे परिवर्तनशील होती है। इस की जो पर्याये विभिन्न रूपो मे बदलती है, उसी मे ससार का स्वरूप रहा हुआ है तो वही पयार्य मोक्ष का स्वरूप ग्रहण करती है। आत्मा की एक पर्याय ही उस के पतन का रूप होती है तो उसी की अन्य पर्याय उन्नति का रूप बन जाती है। आत्मा की जो पर्याये है, वे उसके स्वरूप की दृष्टि से है। स्वरूप शुद्धि की तरफ जो आत्मा का गमन है, वही उसकी उन्नति है तथा स्वरूप शुद्धि की तरफ गमन करने मे ही आत्मा बाहर से अपने को समेट कर अन्दर मे केन्द्रित करती है तथा अन्दर मे अपने स्वरूप का दर्शन और परिमार्जन करती रहती है। यही परिमार्जन जब परिपूर्ण रीति से हो जाता है तो आत्मा अपने स्वरूप मे परम बन जाती है।

द्रव्य से एक आत्मा . पर्याय से तीन आत्माएँ

ठाणांग सूत्र के प्रथम अध्ययन के प्रथम सूत्र के प्रसग से शास्त्रकारो ने कहा है–"एगे आया" अर्थात् आत्मा एक है। सामान्य दृष्टि से आत्मा के उपयोग की दृष्टि से द्रव्य रूप आत्मा एक ही है और पर्याय की दृष्टि से असख्य प्रदेशो वाली है। एक आत्मा की भी जब एक और अनेक स्थितियाँ है और सब आत्माओ की अपेक्षा से चिन्तन किया जाय तो वहाँ पर भी एक और अनेक का प्रसग आता है। एक और अनेक के प्रसंग मे अनन्त आत्माओ का समावेश हो जाता है।

फिर भी शास्त्रकारो ने 'एगे' आत्मा कहा– यह समी आत्माओ मे रहे हुए एकात्मीय भाव को लेकर कहा है। सभी आत्माएँ द्रव्य रूप से मूल मे सम-स्वरूपी होती है– यह उनकी एकात्मीयता है। दूसरे, जब कोई आत्मा उन्नति पथ पर अग्रसर होती है तो अपने विचार, वचन एव व्यवहार से ससार की समी आत्माओ को अपनी ही आत्मा के तुल्य देखती है– यह भी एकात्मीय भावना के फलस्वरूप ही होता है। आत्माओ की यह एकता मूल मे है तो आत्मा के चरम विकास मे भी निहित है। इस दृष्टि से आत्मा एक कही गई है।

लेकिन गुणो की दृष्टि से आत्माओ को विभिन्न श्रेणियो मे विभक्त कर सकते है। आत्माओ की जो गुणशीलता होती है, उसी से उनकी विभिन्न पर्यायो का निर्माण होता है। विभिन्न पर्यायो के सदर्भ मे ही यह देखा जाता है कि अमुक आत्मा मार्गहीन होकर भटक रही है, मार्ग पर गमन कर रही है अथवा अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच गई है। जैसे उन्नति की पर्यायो मे आत्मा का स्वरूप उज्ज्वल से उज्ज्वलतर तथा उज्ज्वलतर से उज्ज्वलतम बन जाता है, वैसे ही अपने पतन की पर्यायो मे आत्मा अपने स्वरूप को अधिकाधिक मलिन भी बनाती जाती है।

संसार की चारो गतियो मे रहने वाली जितनी आत्माएँ है– चाहे वे नरक मे है, मनुष्य लोक या तिर्यच लोक मे है अथवा स्वर्ग मे है तथा उसके बाद मोक्ष का क्रम आता है जहाँ गति नही है, चरम स्थान है एव मोक्ष की चरम सीमा है, उन सब आत्माओ का तीन प्रकार से विभक्तिकरण किया गया है। तीन विभाग इस प्रकार है– एक बहिरात्मा, दूसरी अन्तरात्मा तथा तीसरी परमात्मा। आत्मा के साथ शरीर तो जिस जाति मे है, वैसा ही रहेगा। मनुष्य का शरीर है तो मनुष्य की आकृति सामान्य रूप से सब मे पाई जायगी। लेकिन मनुष्य के भीतर का दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न तरीको से चलेगा। ये तीन विभाग भीतर के भावना चक्र

पर आधारित है। भावनाओ मे परिवर्तन के अनुसार पर्यायो मे परिवर्तन आता रहता है। अपनी ही मनोदशा तथा विचार सरणियो मे आत्मा बाहर से अन्दर तथा अन्दर से बाहर होती रहती है और जब विचार सरणि उत्कृष्टतम स्थिति तक पहुँच जाय तो आत्मा की डोलायमान अवस्था समाप्त होकर वह परम ज्ञानी– केवलज्ञानी हो जाती है। उसका परम स्वरूप प्रकाशित हो जाता है।

आत्मा की पर्यायो को समझने के लिये तथा उसको उन्नतिशील पर्यायो मे गतिशील बनाने के लिये भावनात्मक आधार एव उसके स्वरूप को प्रमुख रीति से हृदयगम करना चाहिये तथा उस की विशुद्धता तथा श्रेष्ठता का निर्माण करना चाहिये।

आत्मा का बाहर ही बाहर भटकाव · बहिरात्मा का स्वभाव

आत्मा जो अपने निज के स्वरूप मे रमण नही करती है, बल्कि बाहर ही बाहर पौद्‌गलिक ससार मे परिभ्रमण करती है– यह उसकी स्वस्थ गति नही होती, बल्कि उसका भटकाव होता है। इस बाहर के भटकाव की वजह से उसका बर्हि स्वरूप है। बहिरात्मा का स्वभाव हो जाता है कि वह बाह्य पदार्थो की ममता मे उलझती रहती है। वास्तविक रूप से इसे आत्मा का विभाव कहना चाहिये क्योकि मूल आत्मा का जो स्वभाव होता है, वही उसका अपना भाव कहला सकता है। जो बाते अपने मूल स्वभाव के विपरीत आत्मा पकड लेती है अपनी भटकाव की दशा मे– वे उसकी स्वभाव रूप नही होकर विभाव रूप होती है। स्वभाव से विपरीत को विभाव कहते है और जितना आत्मा का विभाव मे चलना होता है, वह सब आत्मा का भटकाव कहलाता है।

बहिरात्मा का स्वरूप ऐसा होता है कि वह मनुष्य बाहरी वस्तुओ को ही सब कुछ मानकर चलता है। दिखाई देने वाले पदार्थो पर ही उसका श्रद्धान् होता है और वह यह सोचता है कि जो कुछ है सो यह शरीर ही है तथा इस शरीर को सुख पहुँचाने वाले इससे सम्बन्धित पदार्थ ही है। उसकी ऐसी ममता उसके मन मे यह लालसा जगाती है कि वह इन दिखाई देने वाले सुखदायक पदार्थो को अधिक से अधिक मात्रा मे एकत्रित एव सचित करे। अपने शरीर के लिये ही अधिक से अधिक सुख सुविधाओ का सयोग जुटावे। परिवार एव सामाजिक क्षेत्रो मे लोक रीति रिवाजो के जरिये अपने ऐश्वर्य की छाप छोडे। सार्वजनिक प्रसग से अपने आस पास के वातावरण मे अपनी बाहर की शान

बनावे और अन्यान्य लोगो को अपनी और आकर्षित करके अपनी लौकिक प्रतिष्ठा का प्रसार करे ताकि बाहर की दुनिया चाहे आतक और दबाब से ही हो– उसको सम्मान की दृष्टि से देखे। ऐसी बहिरात्मा को लालसाएँ और इच्छाएँ होती है। वह ऐसी आकाश के समान अनन्त इच्छाओ के वशीभूत होकर संसार की परिधि मे भटकती रहती है।

ऐसी ही अनन्त इच्छाओ की वितृष्णा मे मनुष्य जीवन की अधिकाश प्रक्रियाएँ सचालित होती हैं। बहिरात्मा का हर्ष अथवा विषाद इन्ही इच्छाओ की पूर्ति अथवा आपूर्ति पर आधारित होता है लेकिन हकीकत मे बहिरात्मा विषाद मे ही ज्यादा डूबी रहती है। तृष्णा का आरपार नही होता– एक इच्छा पूरी हो भी जाती है और उसका हर्ष महारस भी नही होता उससे पहले ही अन्यान्य इच्छाओ के पूरी न हो पाने का विषाद उसे घेर लेता है। कोई भी इच्छा पूरी नही होती है तो बहिरात्मा रोती चिल्लाती है।

बहिरात्माओं का हर्ष और विषाद उनकी आतुरता और उनके अभाव

बहिरात्माओ की दृष्टि बाहर ही बाहर दौडती है तथा बाहरी पदार्थो की अवस्था पर ही उनका हर्ष और विषाद निर्भर करता है। धन और परिजन की जहाँ क्षति होती है, वहाँ वे शोकातुर बन जाती है। धन की क्षति चोर लुटेरो से भी हो सकती है तो सरकार के अकुश से भी। धन के चले जाने पर मनुष्य कितना आर्त्तध्यान मे डूबता है, कितना विषाद करता है तथा कितना रोता चिल्लाता है बल्कि इससे उसके शरीर पर भी भारी बुरा असर पडता है। चिन्ता के ऐसे समय मे धन का मोह शरीर मोह से भी अधिक हो जाता है। धन खोने पर या न पा सकने पर भूख प्यास गायब हो जाती है, आकृति कुम्हला जाती है और भारी शोक संताप मे कभी-कभी मनुष्य इतना रोगी बन जाता है कि ससार से ही चल बसता है। इतना उसका आकर्षण धन के प्रति होता है।

बहिरात्माएँ इस धन लालसा के पीछे अनीति करती है, अन्याय की कालिमा मे लिपटती है तो तरह-तरह के अपराधो के जाल मे फसती हैं। ऐसे बहुतेरे मनुष्यो के रूपक आप देख रहे होगे। ऐसे मनुष्यो को धर्म कर्म कुछ नही सुहाता– एक मात्र धन सुहाता है। आन्तरिक जीवन की बात उनको पसन्द नही पडती और सन्तो के सम्पर्क मे जाना भी वे ठीक नही समझते है। दिन रात का सारा समय वे वही पर बिताना चाहते है, जहाँ पर धन की प्राप्ति हो सकती हो।

ऐसे लोगो का सारा ध्यान बाहर ही लगा रहता है। बहिरात्माओ का ऐसा ध्यान बहिर्ध्यान कहलाता है।

बहिर्ध्यान मे ही उनका हर्ष और विषाद फूटता है तो उसमे ही उनकी आतुरता बनी रहती है। इसी ध्यान मे लगे रह कर वे मनुष्य-तन मे रहते हुए भी अपने आन्तरिक जीवन मे कोई भी विकासोन्मुख परिवर्तन नही ला सकते है। उनका यह अमूल्य आयुष्य जब समाप्त होता है तो उसके बाद उनको छोटी और नीची जिन्दगी मिलती है जहॉ से पुन मनुष्य रूप मे आने मे बहुत बडी कठिनाई होती है। मनुष्य धन की लालसा मे अपने इस दुर्भाग्यपूर्ण भविष्य को नही देखता है– अपने जीवन के ह्रास की ओर से वह सावधान नही होता है और इसलिये वह अनेक प्रकार के क्रूर कर्मो मे अपने आपको प्रवृत्त बना लेता है। ससार मे जितने भी अत्याचार, अन्याय, शोषण आदि की जितनी प्रक्रियाऍ चल रही है, वे इस प्रकार के बहिर्ध्यान के कारण ही है। सासारिकता मे गहरे तक डूबी हुई बहिरात्माओ का जीवन इसी प्रकार के पतनोन्मुखी कार्यो मे व्यतीत होता है। उनको कितनी ही सावधानी दिलाई जाय अपने आपको बदलने की जानकारी कराई जाय, पर वे मानवीय धरातल पर खडे होने मे भी अपनी असमर्थता का अनुभव करती है। उनके जीवन मे आत्मीय गुणो का अभाव बना रहता है। बहिध्र्यान मे उनकी आतुरता उनको इस अभाव की ओर देखने भी नही देती। बहिरात्माओ की यही सबसे बडी दुर्बलता होती है।

बहिर्ध्यान मे डूबी बहिरात्माऍ मिथ्यात्त्व के थपेड़ो मे

बहिर्ध्यान मे डूबी बहिरात्माओ के कोरे बाह्य जीवन से ससार का कितना कुछ अकाज होता है– उसके स्वरूप की स्थिति का दिग्दर्शन कथन से नही, उनके व्यवहार से भलीभाति किया जा सकता है। बहिर्ध्यानी मनुष्य अपने परिवार के सदस्यो के साथ मे भी भला व्यवहार नही कर सकते है– भाई और भतीजो के बीच मे कितना कुछ सघर्ष छिडता है तथा कितनी मुकदमेबाजी होती है– ये दृश्य आप रात दिन देखते है और बाते तो दूर रही, केवल एक हाथ जमीन के लिये सारी आन्तरिकता और निकटता को खोकर ये लोग एक दूसरे के खून तक के प्यासे हो जाते है। क्या वह जमीन किसी के साथ चलती है ? जमीन तो जमीन की जगह रह जाती है, लेकिन बहिरात्माऍ कालुष्य और कटुता के पहाड खडे कर देती है। चूकि बहिरात्माऍ बाह्य पदार्थो को ही सब कुछ मानकर चलती है और उसी के दुष्परिणाम मे कुटिल और विघटनकारी दृश्य

उपस्थित होते है।

परिवार मे बहिर्ध्यान का रूपक देखने की स्थिति मे जावे तो वे बहुतेरे मिल जायेगे। महाभारत का सारा रूपक इसी संदर्भ मे आ जाता है। महाभारत किसलिये छिडा था ? पाचो पाडव भाइयो को उनके हक की जमीन नही देने के लिये ही तो छिडा था। दुर्योधन ने कह दिया कि सुई की अणी (नोक) पर आवे उतनी जमीन भी मै बिना युद्ध के देने को तैयार नही हूँ। क्या वह जमीन अकेले दुर्योधन की थी ? जमीन उसकी नही थी लेकिन वह मानता था कि सारी जमीन उसी की है। बहिर्ध्यान की ममता मनुष्य को अंधा बना देती है। जो वस्तु जिसकी नही है, उसको अपनी मान लेना– यही विपरीत ज्ञान है तथा इसी को मिथ्यात्त्व कहते है।

बहिर्ध्यान में डूबी बहिरात्माएँ मिथ्यात्त्व के थपेडो मे रात दिन इधर से उधर डोलायमान बनी रहती है। मिथ्यात्त्व उनकी मति भ्रष्ट कर देता है तथा सुमति को पनपने ही नही देता है। मिथ्यात्त्व की बडी-बडी परिभाषाएँ शास्त्रकार समझाते है, लेकिन मै समझता हूँ कि जिन्होने शास्त्रीय ज्ञान की वर्णमाला की भी जानकारी कर ली है, वे मिथ्यात्त्व के स्वरूप को समझ सकते है। पच्चीस बोल के थोकडे मे मिथ्यात्व का उल्लेख आया है तथा उसे दस प्रकार का बताया गया है। वह दस प्रकार का मिथ्यात्त्व है– 1 जीव को अजीव श्रद्धे तो मिथ्यात्त्व, 2 अजीव को जीव श्रद्धे तो मिथ्यात्त्व, 3 धर्म को अधर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्त्व, 4 अधर्म को धर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्त्व, 5 साधु को असाधु श्रद्धे तो मिथ्यात्त्व, 6. असाधु को साधु श्रद्धे तो मिथ्यात्त्व, 7 ससार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्त्व, 8 मोक्ष के मार्ग को ससार का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्त्व, 9 आठ कर्मो से मुक्त को अमुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व तथा 10 आठ कर्मो से अमुक्त को मुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व।

बहिरात्मा का यह वैभाविक स्वरूप हो जाता है कि वह मिथ्या को सत्य मानने लग जाती है। जीव, धर्म, साधु, मोक्ष एव सिद्ध के सही स्वरूप को वह नही समझती तथा उल्टे रास्ते पर चलती है। कुदेव, कुगुरु तथा कुशास्त्र पर विश्वास रख कर वह अपने जीवन को मिथ्यात्त्व से कलकित बनाती रहती है। मिथ्यात्त्व के ये थपेडे उसे ससार के महासागर मे गोते खिलाते रहते है।

आत्मा की सुमति से गति बाहर से अन्दर की ओर

भगवान् सुमतिनाथ के चरणो मे बैठकर जब आत्मा यत्किचित् रूप से भी सुमति को ग्रहण करती है तो उसे अपने बाह्य रूप पर विचार होता है, ग्लानि

पैदा होती है और तब वह अपनी गति को बाहर से अन्दर की ओर मोडती है। अन्दर की गहराई मे जब वह उतरती है तभी उसे बाहर की निस्सारता समझ मे आती है। बाहर के दृश्य कितने खोखले होते है– इसको वह भलीभाति महसूस करने लगती है। इसी अनुभूति के साथ आत्मा मे अन्तर्जागृति उत्त्पन्न होती है। वह देखती है कि उसका मूल स्वरूप क्या है और उसका वर्तमान स्वरूप क्या बना हुआ है ? उसको मोक्ष की किस दिशा मे गति करनी चाहिये और वह सासारिक मोह ममत्त्व की किस विपरीत दिशा मे नीचे गिरती जा रही है ? यह आत्म-जागृति अन्तरावलोकन कराती है।

अन्तरावलोकन के साथ अपने जीवन का सशोधन करने वाली आत्माएँ बाहर को सकुचित परिधि से निकल कर अन्तर्जगत् के असीम क्षेत्र मे विचरण करने लगती है तो वे अन्तरात्मा का स्वरूप ग्रहण करना आरभ कर देती है। इस स्वरूप की परिपुष्टता के साथ उन आत्माओ की श्रेणी बदल जाती है– पर्याय परिवर्तित हो जाती है। वे तब बहिरात्मा नही रहती– अन्तरात्मा बन जाती है। बाहर का शरीर– रूप रग वैसा ही रहता है लेकिन अन्तरात्मा की भावना तथा व्यवहार शैली परिवर्तित हो जाती है। अन्तरात्मा तब सासारिक प्रलोभनो से विलग हो जाना चाहती है क्योकि उसकी धन, पद या यश प्राप्त करने की लालसा मन्द हो जाती है। आपके सामने वकील साहब डूगर सिह जी बिराजे हुए हैं। इनको उनकी धार्मिक सेवाओ के सम्मान मे साधुमार्गी समाज ने मान पत्र देना चाहा तो ये उस सम्मान समारोह मे पहुँचे ही नही। व्याख्यान के समय किसी बाल बच्चे ने टट्टी-पेशाब कर दिया है तो ये अपने हाथ से उसको साफ कर लेगे। यह उनके आन्तरिक जीवन का नमूना बता रहा हूँ। वैसा ही जीवन सामने बैठे जीवनसिह जी कोठारी का है। कई दिनो से यहाँ आये हुए है, पर सीधी सादी स्थिति से मालूम ही नही पडता कि क्या कुछ है ? लेकिन बच्चे की स्थिति से अभी आपको पता लग गया कि मिथ्यात्त्व के भेद पूछे तो उस बच्चे ने तुरन्त बता दिये। जिनके माता पिता की आन्तरिकता का विकास हो जाता है, उनके बच्चो मे भी वे सस्कार फलते और फूलते है और माता-पिता ही जब बहिर्ध्यानी बने रहते है तो उनके बच्चो की दशा का क्या पूछना ?

आत्मा की आन्तरिक गति का ही यह सुप्रभाव परिलक्षित हो सकता है कि माता-पिता स्वय सन्तो की सेवा मे पहुँचे, अपने सस्कारो का परिष्कार करे तथा धार्मिक क्रियाओ मे अपने को नियोजित बनावे। उनके परिवर्तन पर ही उनकी सन्तानो का सही परिवर्तन अधिकाशत निर्भर करेगा। जब से चातुर्मास शुरू हुआ है, तब से सम्पतमुनि जी ने दो घटा प्रतिदिन धार्मिक शिक्षण के लिये

रख छोडा है। कुछ दिन तक तो आप लोगो की तरफ से उत्साह दिखाया गया, परन्तु बाद मे सुस्ती आ गई। इससे मालूम होता है कि माता-पिताओ को सन्तान की जितनी चिन्ता होनी चाहिये, उतनी नही है। सन्त अपना अमूल्य समय दे रहे है तो सामायिक प्रतिक्रमण सीखे तथा बहिरात्मा से अन्तरात्मा बनने की चेष्टा करे।

अन्तरात्मा का निर्माण कैसे हो सकेगा ?

मिथ्यात्व का भेद अभी आपने सुना कि जीव को अजीव श्रद्धे और अजीव को जीव श्रद्धे तो वह मिथ्यात्त्व का रूपक होता है। जीव किसको कहते है ? जीव उसे कहते है, जिसमे उपयोग हो। चेतनाशीलता होती है, वह जीवन कहलाता है। जीव चेतना एव उपयोग लक्षण वाला, सुख दु ख की वेदना करने वाला, पर्याप्ति और प्राण का धर्ता, आठ कर्म का कर्त्ता और भोक्ता, सदा काल शाश्वत रहने वाला, कभी नष्ट नही होने वाला और असख्य प्रदेशो वाला होता है। जो जीव है, वही आत्मा है। जीव ही शरीर धारण करता है तथा शरीर मे रहकर आहार ग्रहण करता है और शरीर को बढाता है। इन सारे लक्षणो से रहित तत्त्व अजीव होते है। इसलिये मिथ्यात्त्व इस पहली ही कडी पर जब टूटता है तो श्रद्धान् का सत्य प्रकट होता है। जीव को जीव रूप मे श्रद्धान् कर लेने पर आत्म तत्त्व की प्रतीति हो जाती है। जो वस्तुत जिस रूप मे नही है, उस मे उस रूप की प्रतीति ही मिथ्यात्त्व है इसीलिये मिथ्यात्त्व को अधेपन की सज्ञा दी जाती है। यह अधापन जब खुलता है तो वस्तुस्वरूप को उसके यथार्थ रूप मे देख सकने की दृष्टि प्राप्त होती है। यह दृष्टि सम्यक्त्व की दृष्टि होती है।

सम्यक्त्व की दृष्टि सजग होने के साथ-साथ बहिरात्मा अन्तरात्मा का स्वरूप ग्रहण करती जाती है। सम्यक्त्व धारण करके जब अन्तरात्मा अपने आन्तरिक स्वरूप को विकसित करती हुई आगे बढती चली जाती है तो वह चौदह गुणस्थान क्रम मे ऊपर से ऊपर के सोपान पर चढती चली जाती है। मिथ्यात्त्व मन्द होता है तो सम्यक्त्व की दृष्टि सजग बनती है। वह दृष्टि उसे व्रतधारी बनाती है एव व्रतो के पालन मे ऊपर उठाती है। तब भावनाओ की उत्कृष्टता जन्म लेती है, प्रमाद धीरे-धीरे शिथिल होने लगता है और कर्मो की निर्जरा के साथ-साथ ज्ञान का आलोक प्रखर बनता जाता है।

यही अन्तरात्मा के निर्माण का सुव्यवस्थित क्रम होता है। कठिन क्रिया की आराधना से वह अपने पूर्व कर्मो को क्षम करती चली जाती है तो उसकी निर्मलता निखरती जाती है। निर्मलता उस के ज्ञान का सर्वोच्च विकास कर देती है जो केवलज्ञान के रूप मे प्रकट होता है। उसके बाद वैसी अन्तरात्मा ही अपनी सर्वश्रेष्ठ श्रेणी परमात्मा की श्रेणी की ओर प्रगतिशील बन जाती है।

अन्तरात्मा से परमात्मा : आत्मा की चरम लक्ष्य-सिद्धि

इसे ही आत्मा की चरम लक्ष्य सिद्धि मानी गई है कि वह अपने स्वरूप को सम्पूर्णतया निर्मल बना कर अन्तरात्मा से परमात्मा की श्रेणी मे पहुँच जावे, क्योकि वही चरम स्थिति है जहॉ से फिर ससार मे आवागमन नही होता है। यही मोक्ष है जहॉ सदा सर्वदा के लिये सिद्धात्मा विराजमान रहती है।

कवि आनन्दघन जी ने सकेत दिया है कि तीन तरह की आत्मा है– बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। बहिरात्मा की पहिचान बताई है कि वह छोटी-छोटी बाहर की चीजो मे उलझती है और अपने बडे स्वरूप के बिगडने की ओर से बेभान बनी रहती है। वह स्वार्थ और ममत्त्व से लिप्त होती है। स्व आचार्य श्री फरमाया करते थे कि एक जारनी बहिन के बच्चे को एक पुरुष अपनी गोद मे लेकर बैठा और 'मेरा बच्चा, मेरा बच्चा' करता हुआ उसको खेलाने लगा। वह जारनी हसने लगी कि यह जिसको अपना बच्चा समझ रहा है, इसको पता नही कि वह किसका बच्चा है ? जैसे जारनी उस पुरुष पर हसती है, वैसे ही सासारिक ममता भी कही आप पर न हसती हो ?

अपने वर्तमान जीवन पर गभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। अपने बाहरी रूप की मलिनता को पहिचाने और अन्दर मे झाकने का प्रयास करे। यह प्रयास जितना सफल होगा– जितनी आत्मा बाहर से अन्दर की गहराई मे उतरेगी, उतना ही आत्मा का परम स्वरूप निखरने लगेगा। आत्मा की इस चरम लक्ष्य सिद्धि की ओर आपके चरण आगे बढेगे तभी जीवन मगलमय बन सकेगा।

नोखा
१८.१०.७६

❑❑❑

11

अपने ही घर के खजाने की खोज

सुमति चरण रज.

आतम बुद्धे कायादिक ग्रह्यो,
बहिरातम अघरूप—सुज्ञानी
कायादिक नो हो साखी घर रह्यो,
अन्तर आतम रूप सुहानी

इस मनुष्य जीवन की पावन सफलता अपनी ही अन्तरात्मा के स्वरूप को पहिचानने मे है। तीन प्रकार की आत्मा मे बहिरात्मा का रूप अघ याने पाप रूप माना गया है। अन्तर्ज्ञान की मार्मिक दृष्टि से जब बहिरात्मा के स्वरूप का अवलोकन किया जाता है तो विदित होता है कि वस्तुत किसी भी विकास की अभिलाषिणी आत्मा के लिये उसके बाह्य रूप मे भटकते रहना किसी भी रूप मे हितावह नही होता है।

एक व्यक्ति को खजाना पाने की इच्छा तो है लेकिन वह उसको खोजने के लिये बाहर ही बाहर घूमता रहे लेकिन अपने ही घर के गहरे स्थानो मे खजाने की खोज नही करे जबकि हकीकत मे वहॉ बहुत बडा खजाना छिपा हुआ हो तो उस व्यक्ति को क्या कहेगे ? उसे बुद्धिमान तो नही ही कह सकेगे। इसलिये अपने ही घर के खजाने की खोज सबसे पहले करनी चाहिये।

बाहर ही बाहर भटकना बुद्धिमानी नही है

कस्तूरी मृग के समान बाहर ही बाहर भटकना बुद्धिमानी नही है। बहुमूल्य कस्तूरी का खजाना मृग की अपनी नाभि मे होता है, लेकिन उसको इस

तथ्य की सज्ञा नही होती है और वह बाहर ही बाहर भटकता रहता है कि उसको कस्तूरी का खजाना मिल जाय। कभी-कभी उस खजाने की खोज मे दौडते-दौडते वह अपने प्राण भी त्याग देता है और इस मनोदशा के साथ मर जाता है कि उसे खजाना नही मिला। वह बाहर मिलता कहॉ से जबकि खजाना तो उसके ही अन्दर था ? क्या ऐसी ही विभ्रमित अवस्था इस बहिरात्मा की नही होती है ?

कवि ने सकेत दिया है कि कौनसी बहिरात्मा है, और कौनसी अन्तरात्मा है ? मनुष्य तन के अवयवो मे आत्मा एक ही दृष्टिगत होती है। जो चलता है, वही देखता है। जो देखता है, वही सुनता है और जो सुनता है, वही चखता है, वही गध लेता है एव वही स्पर्श करता है। पाचो ज्ञानेन्द्रियो का ज्ञान इस मन मे समाहित होकर अनुभव मे एकरूपता लाता है। ज्ञान के ये पाचो साधन दीखने मे भिन्न-भिन्न प्रतीत होते है। आखे सिर्फ रूप ही देखती है, शब्द नही सुनती। कान सिर्फ सुनते है, रूप नही देख सकते है। जिह्वा रस ही चखती है, गध नही लेती और नासिका गध ही लेती है, स्पर्श नही करती। ये पाचो विषय अलग-अलग है, लेकिन मन जब इनका अनुभव करेगा तो वह अनुभव इन पाचो विषयो को एकरूपता मे ढाल देता है। पाचो विषयो का मूल मे अनुभव करने वाला मन एक ही है।

इससे ज्ञात होता है कि पाच नालियो से पानी आ रहा है लेकिन जहॉ पानी आ रहा है, वह तालाब एक ही है। मन को पाचो इन्द्रियो के माध्यम से ज्ञान होता है और उसी आधार पर मन नानाविध सकल्प विकल्प करके आकाश व पाताल की उडाने भरता है। पाचो इन्द्रियो के माध्यम से जिस प्रकार बाहरी पदार्थो का ज्ञान होता है, वैसे ही स्वय शरीर का ज्ञान भी मन करता है और आत्मा भी करती है। भाव मन आत्मा का ही रूप है। बहिरात्मा का लक्षण यह है कि उस समय मे वह शरीर को आत्मा मान कर चलती है। वह शरीर से किसी आत्मा को नही मानती। शरीर को सब कुछ समझ कर उसी के सुख के लिये जो सारे क्रिया कलाप करती है वही बहिरात्मा का रूप होता है। पाच भौतिक तत्त्वो से निर्मित यह शरीर जड आत्मा कहा जाता है और पच भूत के नष्ट होने पर याने कि शरीर के नष्ट हो जाने पर सारा जीवन ही नष्ट हो जाता है– यह बहिरात्माओ की धारणा होती है। वे शरीर से भिन्न कोई आत्मा नही मानती है।

बहिरात्माओ की ऐसी जो धारणा है, वह एकदम कस्तूरी मृग की धारणा के समान होती है। जो आत्मा बाहर ही बाहर भटकती है और अपने ही घर के खजाने की खोज नही कर पाती है, वैसा बहिरात्मा का बहिर्ध्यान किसी

बुद्धिमानी का ध्यान नही कहला सकता है।

जीवन को समझने के लिये धरातल को बदलना होगा

बहिरात्मा तो यही धारणा और कल्पना करती है कि शरीर ही सब कुछ है। वह आत्मा के अस्तित्त्व को भी नकारती है। इस तरह के विश्वास के साथ वह अपने शरीर की हिफाजत मे ही अपने जीवन की सारी ताकत खर्च कर देती है। वह सोचती है कि जितना ज्यादा इस शरीर को आराम दिया जायगा– इसको बढिया खिलाया जायगा, बढिया रूप दिखलाया जायगा, बढिया गाना सुनवाया जायगा, और बढिया स्पर्श सुख दिया जायगा, वही श्रेष्ठ कार्य होगा। इस प्रकार के विचार और इस प्रकार की बुद्धि बहिरात्मा की होती है।

इसका कारण यह है कि जिस तरह के धरातल पर खडे होगे, उसके अनुरूप ही दृष्टि दौडेगी और धारणा बनेगी। बहिरात्मा जब शरीर के धरातल पर खडी होकर दृष्टि और मन को दौडाती है तो वैसे ही दृश्य दिखाई देते है। जीवन को तब शरीर मे सीमित करके ही देखा जाता है। शरीर है तो जीवन है और शरीर गया तो जीवन भी चला गया ऐसा समझ मे आता है। यह धरातल का असर होता है। जिस प्रकार के आधार को मानकर देखा और सोचा जाता है, तब दृष्टि और मन उन्ही सीमाओ के अनुसार चलते हैं। इसलिये जीवन को सही रूप से समझने के लिये धरातल को बदलना होगा। तब शरीर का आधार छोडकर आत्मा के आधार को पकडना और गहराई से समझना होगा।

सकुचित धरातल की वजह से आत्मा का बहिर्रूप अपने ही मूल रूप की सज्ञा खो देता है और इसीलिये यह बहिर्रूप ज्ञानियो द्वारा पाप रूप कहा गया है। ज्ञानीजन कहते है कि ऐसा पाप रूप इसी आत्मा का होता है जब वह बाहर ही बाहर भटकती है। लेकिन जब यहॉ आत्मा शरीर के धरातल को छोडकर अपने स्वय के धरातल पर खडी होती है और उसके आधार पर अपनी दृष्टि और विचार दशा का निर्माण करती है, तब उस समय उस आत्मा का आन्तरिक रूप प्रकट होने लगता है। तब वही आत्मा अन्तरात्मा के रूप मे ढलने लगती है। आत्मा पृथक्-पृथक् नही होती है– उसके रूप पृथक-पृथक् नही होती है। इस रूपी बहिरात्मा को छोड कर जब अन्तरात्मा मे प्रवेश किया जाता है तो वही अन्तरात्मा शरीर के धरातल से पृथक् होकर शरीर के वास्तविक रूप को स्पष्टता से देख सकती है। बहिरात्मा को दृश्य शरीर माना जाता है तो आत्मा

का आन्तरिक रूप उसका अन्तर्जीवन होता है।

जीवन बाहर दिखाई देने वाला इजिन ही नही होता है, बल्कि उसके भीतर बैठा हुआ बाहर से नही दिखाई देने वाला ड्राइवर होता है। इजिन को चलता फिरता इसीलिये देख सकते है कि उसका ड्राइवर उसको चला रहा होता है। उसी प्रकार जब इस शरीर के ड्राइवर को भी समझने की चेष्टा की जाती है, तब मानना चाहिये कि धरातल बदलने लगा है और बहिरात्मा अपने बहिर्रूप को मन्द बना कर अपने ही स्वरूप की गहराई मे उतरने का यत्न करने लगी है।

अपने घर मे ही
गहरी खोज करने की बात

आत्मा जब अपने ही स्वरूप मे गहरे उतर कर चिन्तन करती है, अपनी ही शक्तियो की शोध करती है, तब अपने घर मे ही खजाने की खोज करने की बात सामने आती है। जब भी इस अन्तरात्मा का स्वरूप विकसित होने लगता है, तब अन्दर का रास्ता बनता है और तब उससे भीतर ही भीतर गहरे उतरने तथा खजाने की खोज करने की कोशिश शुरू होती है। भीतर उतरने का मतलब शरीर के अन्दर के ज्ञान को देखना है तथा खजाने की खोज करने का मतलब अपने ही जीवन मे दबी हुई अपार शक्तियो को कर्मठता से प्रकट कर देना है।

इन्सान जब तक बाहरी ज्ञान को ही सब कुछ समझता है, तब तक वह आन्तरिकता से अनभिज्ञ ही बना रहता है। लेकिन जब कभी किसी शुभ सयोग से अन्दर मे भरे हुए ज्ञान की झलक पा लेता है तो फिर उसे उसकी जिज्ञासा लग जाती है। तब वह अपनी आन्तरिकता की खोज करने लगता है और एक दिन उस स्थल तक पहुँच जाता है जिसे अन्तरात्मा कहा जाता है।

आधुनिक युग के वायुमडल मे रमने वाले मेरे कई भाई आध्यात्मिक जीवन की तरफ कम लक्ष्य देते है। उनका दृष्टिकोण भौतिक जगत् की तरफ होता है, जिसके परिणामस्वरूप अपने सारे ज्ञान की कसौटी वे विज्ञान को बना लेते है। किसी भी बात को वे सुनते है तो सबसे पहले यह जानने की चेष्टा करते हैं कि इसके विषय मे विज्ञान क्या कहता है ? किसी भी वस्तु को देखेगे तो उन का चिन्तन यह होगा कि इसमे विज्ञान क्या खोज कर रहा है ? उनकी बुद्धि भौतिकता मे ही दौडती रहती है। भौतिकता के धरातल पर से भौतिकता ही

दिखाई देती है और उन्हे भौतिकता ही समझ मे आती है। जिस विषय मे विज्ञान कुछ बोलता है तो वे भी बोलने लगते है। किन्तु विज्ञान को आधार मान कर चलने वाले महानुभावो को मालूम होना चाहिये कि ये दिखाई देने वाले भौतिक विज्ञान के चमत्कार भी आत्मा की ही शक्ति से पैदा हुए और सामने आये है। आत्मा की शक्ति ही वैज्ञानिकता की खोज करती है और वैज्ञानिक बनाती है।

विज्ञान की सर्जना कहॉ होती है ? क्या किसी प्रयोगशाला मे, रसायन शाला मे या कर्मशाला मे ? सबसे पहले ज्ञान के रूप में, विचार और चिन्तन के रूप में उसकी सर्जना आत्मिक धरातल पर ही होती है। जिनके सस्कार प्रारम्भ से ही वैज्ञानिक क्षेत्र मे पडे, उन्होने भी बाद मे आत्मिक धरातल को समझा तथा अपने घर के खजाने की खोज की। एलिजाबेथ टेलर नामक एक महिला की अनुभूति पिछले दिनो वैज्ञानिक जगत् के सामने आई है। तथ्य बताये गये हैं कि जब एलिजाबेथ का ऑपरेशन हो रहा था– शरीर ऑपरेशन टेबुल पर पडा था लेकिन उसको ऐसा महसूस हुआ कि जैसे वह अपने शरीर से अलग हट कर अपने शरीर को और उस पर की जाने वाली क्रियाओ को स्वय देख रही थी। उसने अपना स्पष्ट अनुभव बताया है कि उसने कोई वेदना अनुभव नही की तथा तटस्थ दृष्टा के समान उसने अपना ही ऑपरेशन देखा।

सोचिये कि जब एलिजाबेथ के शरीर का ही ऑपरेशन हो रहा था तो उसके इस ऑपरेशन को देखने वाली कौन थी ? यह उसकी अपनी अन्तरानुभूति थी। यह भौतिकता के क्षेत्र मे पलने वाली महिला का अनुभव है। देखने वाले अन्दर का जीवन देख लेते है। इस दृष्टान्त से आप विचार करे और अपनी गति को भी बाहर से अन्दर की ओर मोडे। बाहर कुछ नही मिलेगा– जो कुछ खजाना है वह अपने ही अन्दर बन्द और दबा हुआ है। उसका उद्‌घाटन करने से वह मिलेगा। इसलिये अपने घर मे ही खजाने की खोज करने की बात सबके सामने है।

सूक्ष्म दृष्टि और पैनी विचार शक्ति को अपनाइये !

सूक्ष्म दृष्टि और पैनी विचार शक्ति को अपनाइये ताकि आपकी बुद्धि भी अन्तरात्मा की तरफ मुडे। जिस शरीर को धारण करके बैठे है, उस चोले के ऊपर से अन्दर मे जाने की क्षमता वे लोग भी प्राप्त कर रहे है जो निखालिस भौतिकता मे विश्वास करते है। भौतिक वैज्ञानिको की गति भी यहॉ तक हो रही

है कि इस स्थूल शरीर के भीतर रहे हुए सूक्ष्म शरीर की खोज मे वे लगे हुए है। भीतर का सूक्ष्म शरीर इस स्थूल शरीर से बाहर भी निकल सकता है और वह स्थूल शरीर की प्रक्रियाओ को बाहर से देख सकता है। एलिजाबेथ का भी यही अनुभव था कि उसने अपने ही शरीर को देखा-देखने वाला सूक्ष्म शरीर था।

इसी प्रकार का एक और अनुभव पढने मे आया है। कनाडा की कोलम्बिया विधान समा के बहुतेरे सदस्य वहॉ पर उपस्थित थे। एक विधायक के लिये डॉक्टर ने कह दिया था कि वह गभीर रूप से बीमार है और मृत्यु शैय्या पर पडा हुआ है। वह विधानसभा मे उपस्थित भी नही हो सकता था। लेकिन विधान-सभा मे एक महत्त्वपूर्ण विषय पर चर्चा हुई और मतदान हुआ तो उस विधायक को मतदान करते हुए देखा गया। मतदान के बाद सामूहिक फोटोग्राफ हुआ जिसमे भी उसका चित्र आया है। यहॉ स्थिति साफ थी कि वह मृत्यु शैय्या पर पडा हुआ था, फिर मतदान किसने किया और फोटो किसने खिचवाया ? इन घटनाओ से सारे ससार का ध्यान अन्तरात्मा की ओर मुडा है।

भौतिक जगत् के लोग इस रूप मे आध्यात्मिकता की तरफ मुड रहे है, फिर आप लोगो को तो आध्यात्मिकता सहज रूप मे विरासत मे मिली है। यदि आप सूक्ष्म दृष्टि एव पैनी विचार शक्ति को अपनावेगे तो अपने सूक्ष्म शरीर के अन्दर प्रवेश कर सकेगे। अन्दर के केन्द्र पर पहुँचने तथा वहॉ स्थिर होने मे पहले-पहले बडी कठिनाई आती है, लेकिन नियमित रूप से अभ्यास किया जाय– एकाग्र ध्यान लगाया जाय तो आत्मस्थ हुआ जा सकता है– ऐसी स्थिति को ही स्वस्थ स्थिति कहते है। जो बाहर भटकता है वह परस्थ होता है किन्तु जो अपने निजत्त्व मे अपनी ही आत्मा के मूल स्वरूप मे स्थित होता है, वह स्वस्थ कहलाता है। यह आत्म-स्वास्थ्य की स्वस्थता होती है।

स्वस्थ बनेंगे तो 'स्व' की शोध कर सकेगे

जब भीतर मे पडाव लगावेगे, तभी तो भीतर के खजाने की खोज कर सकेगे। स्वस्थ बनेगे तो स्व की शोध होगी। शोध होगी तो आत्म निधि–उपलब्धि से कब तक बच कर रह सकेगी ? अन्तर्जगत् की सृष्टि का जब आपको ज्ञान होगा, तो आप आनन्द विभोर हो जायेगे। बाहरी पदार्थो मे जितने दीवाने बन रहे है– यह अज्ञान और अविवेक है। इससे छूट कर एक वक्त भी दृष्टि अन्दर की ओर चली गई तो फिर बाहर का दीवानापन खत्म हो जायगा

अपने को .

और अन्दर मे ही गहरी अभिरुचि लग जायगी। तब आपको जबरदस्ती भी कोई कहेगा कि सिनेमा देखे अथवा इन्द्रियो के अमुक-अमुक विषयो का सेवन करो, तब भी आपका ध्यान उधर नही जायगा। यह अवस्था तभी बनेगी, जब स्वस्थ होगे– अपनी ही आत्मा की आन्तरिकता का केन्द्र मानकर चलेंगे।

यह कठिन आध्यात्मिकता की स्थिति का विषय आपकी कठिनाई की उपेक्षा करके भी मै क्यो बता रहा हूँ ? इसीलिये कि आप कुछ न कुछ ध्यान मे रख कर महावीर प्रभु के सिद्धान्तो के मार्ग पर आगे बढाने का प्रयत्न करेगे। वैज्ञानिक भी घूम फिर कर इस मार्ग पर आ रहे हैं, तब आपको तो इस मार्ग पर चलना आरभ कर देना ही चाहिये। बाहर का व्यक्ति दौडकर आपका घर देखने आवे और आप उस घर मे रहते हुए बाहर भटकते फिरे– यह कैसी विडम्बना है ? बाहर के व्यक्तियो को आपके घर की तरफ आते हुए देखकर तो आपमे जिज्ञासा जागनी चाहिये कि अपने घर को हम तो गहराई से देख लें।

इस रहस्यपूर्ण सत्य को सदा ध्यान मे रखे कि आपके घर मे बहुत बडा खजाना भरा पडा है। इस बडे खजाने को ढूंढना है और प्राप्त करना है तो 'स्व' की शोध करनी होगी। 'स्व' की शोध भीतर मे होगी और भीतर मे ही उसकी उपलब्धि भी होगी।' 'स्व' की जो उपलब्धि है, वही आत्मानुभूति से आरभ करके आत्म शक्तियों की प्राप्ति तक विस्तृत रूप से फैली हुई है। जो आत्मा की अपार और अतुलनीय शक्तियॉ है, वही अन्दर का खजाना है। इस खजाने के सामने बाहर के मूल्यवान खजानो का कोई मोल नही है। इस खजाने को खोज लेने के लिये बहिरात्मा से अन्तरात्मा मे जाना पडेगा। आत्मा को बहिर्ध्यान हटाकर अन्तर्ध्यान अपनाना पडेगा। बहिर्मुखी वृत्ति का त्याग करके जब अन्तर्मुखी वृत्ति का विकास होगा तभी आन्तरिक प्रगति सभव हो सकेगी– स्वस्थ बनने की प्रक्रिया परिपुष्ट रूप ग्रहण कर सकेगी।

घर के खजाने को खोजने के लिये घर के अन्दर गहरे उतरिये

पहले अपने सकल्प को स्पष्ट बनावे कि आप अपने घर के इस खजाने को खोजना चाहते है अथवा नही ? क्योकि सही जिज्ञासा और अभिरुचि के बिना कोई कार्य सम्पन्न नही होता है। इस खजाने को खोजने के लिये घर के अन्दर गहरे उतरना होगा और केन्द्रिय बनना पडेगा।

वैज्ञानिक जगत् मे भी आध्यात्मिक लहर आज इस प्रकार चल रही है कि

यदि युद्ध न हो और शान्ति काल चलता रहे तो वैज्ञानिक भी सहारक शस्त्रो के निर्माण से दूर हटकर भीतर की खोज मे लग जायेगे। आप भी ऐसा प्रयत्न करिये कि आपका ध्यान भी बाहर से भीतर की दिशा मे मुड जावे। आप अभी जो बाहरी पदार्थो के विषय मे रात दिन चिन्तित रहते है, उस चिन्ता से धीरे-धीरे विलग होते जावे। बाहर को और शरीर का ध्यान छोडने की स्थिति आयगी, तभी अन्दर जाने का प्रसग बनेगा। बाहरी पदार्थो को सर्वथा छोडने का कहे तो आप शायद ही छोड सकेगे, लेकिन कम से कम व्यर्थ के पदार्थो का तो त्याग कर ही दे। जितनी वनस्पतियॉ है या सचित्त पदार्थ है, उन सब का उपयोग तो आप करते नही है, फिर क्यो नही कुछ की मर्यादा बाध कर बाकी सबका त्याग कर देते है ? यह कोई कठिन त्याग भी नही है।

उपभोग के विशाल क्षेत्र मे यदि आप अपनी लालसाओ को रोकेगे तो वह वृत्ति बाहर से भीतर की तरफ मुडेगी और अन्दर मे केन्द्रीभूत होगी। अपनी वृत्तियो को बाहर घुमा कर केवल अपनी शक्तियो का दुरुपयोग ही कर रहे है– व्यर्थ मे बैटरी की लाईट दिन मे फैक रहे है जिसका कोई उपयोग ही नही है। सोचिये कि दिन मे ही बैटरी खर्च कर दी तो रात के अधेरे मे कैसे देख सकेगे ? बैटरी का सही उपयोग अधेरे मे ही तो हो सकता है, फिर बुद्धिमान किसको समझे– जो अधेरे मे लाईट फैके उसको अथवा दिन मे निरर्थक बैटरी खर्च करे उसको ? यह आप स्वय सोचे। बच्चे भी निर्णय निकाल लेगे कि दिन मे बैटरी का उपयोग निरर्थक है और मूर्खता का काम है। वैसे ही इस मनुष्य जीवन की प्राप्त शक्तियो का उपयोग बाहरी पदार्थो को ही प्राप्त करने के लिये जो किया जाता है, वह निरर्थक और मूर्खता का काम है। अधेरे मे बैटरी का उपयोग करना है, वही उसका सही उपयोग है अत इन प्राप्त शक्तियो का घर के अन्दर रहे हुए खजाने को खोजने मे सदुपयोग किया जाना चाहिये और उसका पहला चरण है कि आप आत्मस्थ बन कर घर मे गहरे उतरे।

बाहर का जितना त्याग करेगे वही अन्दर का आनन्द होगा

बाहर की लालसाओ को सीमित बनाते हुए उनका जितना त्याग करते जायेगे, उतनी ही आपकी आसक्ति समाप्त होगी और आत्मानुभूति विकसित बनेगी। व्यर्थ के पाप बध को रोक लेगे तो धीरे-धीरे अन्य पाप प्रवृत्तियो को रोकने की चेष्टा भी आपकी बनेगी। इस तरह मन की शक्ति जो बाहर की

लालसाओं मे बिखरी रहती है, वह एक रूप और नियन्त्रित बन कर अन्दर प्रवेश करने, देखने और वहॉ स्थित होने के प्रयास को बल देगी। अन्दर की इस प्रक्रिया से आपको अन्तरात्मा के जो दर्शन होगे, उससे अन्दर का अनिर्वचनीय आनन्द प्रस्फुटित होगा।

यह निश्चित है कि आप व्यर्थ के पापो का भी त्याग नही करते है तो व्यर्थ मे कर्म बंध भी करते है। अपने उपयोग-परिभोग की सीमाऍ बाध ले तो यह व्यर्थ का कर्म बध रूक सकता है। वैसे भी अन्तरात्मा के स्वरूप को पहिचानने तथा परिमार्जित बनाने के लिये सर्व प्रकारेण भी त्याग को तो अपनाना ही पडेगा। जितना बाहर का त्याग है, वही अन्दर का आनन्द है और ऐसा अनोखा आनन्द अन्दर के खजाने के मिल जाने पर ही प्राप्त होता है।

नोखा
१९.१०.७६

❑❑❑

12

अन्तर्मुखी वृत्ति और निर्लिप्तता

सुमति चरण रज आतम अर्पणा
दर्पण जेम अविकार—सुज्ञानी

परमात्मा सुमतिनाथ के चरणो मे आत्मा की अर्पणा का प्रसग उपस्थित है। कवि ने प्रार्थना मे आध्यात्मिक भावो का उल्लेख किया है। जानते है आप कि आध्यात्मिकता का अर्थ क्या होता है ? आत्मा के प्रति 'अधि' होना माने कि उन्मुख होना— यह आध्यात्मिकता है। आध्यात्मिकता को हम अन्तर्मुखी वृत्ति का नाम भी दे सकते है, जो जीवन को बाहर से समेट कर आन्तरिक जगत् की दिशा मे उन्मुख बनाती है।

जीवन मे बाह्य पदार्थो के प्रति जो लगाव और आकर्षण होता है, आध्यात्मिक दृष्टि से वह लगाव लिप्तता का परिचायक होता है। लिप्तता का अर्थ है सासारिकता मे लिपट जाना और यह लिप्तता ही मनुष्य को बहिर्मुखी बनाये रखती है। अत. अन्तर्मुखी वृत्ति मनुष्य को अपने स्वयं के आत्मिक रूप मे रमण कराते हुए लिप्तता से भी मुक्ति दिलाती है। अन्तर्मुखी वृत्ति जितनी सूक्ष्म और एकाग्र बनती जाती है, आत्मा की निर्लिप्तता भी निखरती जाती है। निर्लिप्तता से आत्मा की मलिनता दूर होती है तथा उसकी उज्ज्वलता प्रखर बनती है। इस कारण अन्तर्मुखी वृत्ति का निरन्तर विकास इस आत्मा के लिये हितावह माना गया है।

आत्मा के सदर्भ मे शरीर का सन्तुलन

अध्यात्म विज्ञान मूलत आत्मा का विज्ञान है। आत्मा के द्वारा प्रकट होने

वाली प्रक्रियाओ से इसी विज्ञान की सहायता से आत्म-बोध किया जाता है। यह जो शरीर है, वह रूपी आत्मा का रूप है। इसी रूपी आत्मा के भीतर मे होने वाली प्रक्रियाएँ आध्यात्मिकता से सम्बद्ध होती है। ये प्रक्रियाएँ भावो की दृष्टि से ऊँची नीची बनती है और जिस रूप मे परिणामों की गतिविधि चलती है, उस रूप मे आत्म शुद्धि का प्रसग सामने आता है। आत्मा एक होती है। इसकी नेश्राय मे अनेक आत्माएँ पैदा हो सकती है लेकिन वे आत्माएँ तब तक ही रहती है जब तक मूल शरीर की आत्मा रहती है।

आत्मा के सदर्भ मे शरीर के सन्तुलन का दृष्टिकोण स्पष्ट बन जाना चाहिये। शरीर का अस्तित्व उस आत्मा के उस शरीर मे रहने तक ही रहता है। एक शरीर मे एक आत्मा का रहना उसके आयुष्य कर्म बध के अनुसार होता है। जब तक एक शरीर मे आत्मा का निवास रहता है तो वह समूचा शरीर जीवन्त दशा मे कार्यरत होता है। आत्म भावो का प्रभाव शरीर पर और शरीर के कार्यकलापों का प्रभाव आत्म स्वरूप पर पडे बिना नही रहता है, बल्कि दोनों की एक दृष्टि से एकरूपता होती है। आत्मा के संदर्भ मे यदि शरीर का श्रेष्ठ सन्तुलन बैठ जाता है तो वह शरीर भी धर्म साधना का श्रेष्ठ माध्यम सिद्ध होता है। शरीर के सहयोग से जब धर्म साधना परिपूर्ण बनती है तो आत्मा भी अधिकाश रूप मे निजत्त्व पर आरूढ हो जाती है। निजत्त्व का भान होना ही आत्म शुद्धि का मूल कारण बनता है।

शरीर ही के माध्यम से आत्मा जब बाहर के विषयो मे भटकती थी तो वह बहिरात्मा कहलाती थी, लेकिन जब शरीर अपनी जगह आ जाता है और आत्मा के अनुशासन को मान लेता है तो वही शरीर आत्म-साधना का माध्यम बन जाता है। तब वही शरीर सन्तुलित बन कर बहिरात्मा को अन्तरात्मा का रूप दिला देता है। एक दिन शरीर का अस्तित्त्व ही समाप्त हो जाता है और आत्मा परमात्मा बन जाती है। इस प्रकार आत्माएँ अपने इन तीन रूपो– बहिरात्मा, अन्तरात्मा एव परमात्मा मे विचरण करती है।

जहाँ तक जीवन होता है– शरीर और आत्मा का अभिन्न सम्बन्ध होता है। परन्तु दोनो तत्त्व अपने अपने स्थान पर रहे और अपने-अपने कार्यकलापो का सन्तुलन बनाये रख कर समरस गति मे चलते जावे तो वे एक दूसरे के सहायक होकर जीवन मे उच्च प्रगति का चित्र अंकित कर देते है। यह स्थिति आत्मा के अनुशासन मे होती है, लेकिन जब शरीर आत्मा से भी ऊपर हो जाता है तो वह आत्मा को पतन के मार्ग पर ले जाता है। इसलिये आत्मा के संदर्भ मे शरीर का सन्तुलन सही तरीके से बनाये रखना चाहिये।

शरीर का सचालन आत्मा के अनुशासन मे

जैसे एक नट नृत्य करने की दृष्टि से कभी स्त्री की पोषाक सज कर आता है तो कभी पुरुष की पोषाक और कभी किसी अन्य की पोषाक। वह कभी राजा और कभी भिखारी भी बन जाता है। नट एक ही होता है, मगर ये उसके अलग-अलग रूप होते है। उसी प्रकार आत्मा तो एक ही होती है, मगर बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा– ये आत्मा की ही पर्याये होती है। मनुष्य के शरीर मे आत्मा एक है, लेकिन पर्याये बदलती रहने से उसी आत्मा के अनेक रूप देखे जा सकते है। ज्ञानियो ने इन्ही अनेक रूपो को इन तीन पर्यायो मे विभक्त कर दिया है। ये तीनो विभाग एक ही आत्मा के आचरण मे देखे जा सकते हैं। अलग-अलग आत्माएँ अपनी अलग–अलग शक्ति के रूप मे अलग-अलग पर्यायो मे रहती है।

जिस समय आत्मा का उपयोग– उसका ध्यान केवल दृश्य पदार्थो की तरफ रहता है, उस समय सच पूछे तो शरीर प्रमुख बना रहता है और आत्म भाव गौण। इसी कारण शरीर की सुख सुविधाओ पर ही सारा ध्यान केन्द्रित होता है। ऐसे ध्यान मे चलने वाली आत्मा बहिरात्मा होती है याने कि आत्मा का ऐसा रूप उसका बहिरूप होता है जब शरीर अपने अनुशासन मे आत्मा को चलाना चाहता है और अपनी प्रधानता ऊपर रखता है।

लेकिन जो अपने दृष्टिकोण को बदल कर भीतर मे देखने लगता है तो उसे प्रतीति होती है कि यह शरीर स्वय सचालक नही, बल्कि आन्तरिक शक्ति रूप आत्मा इस शरीर की भी सचालक है। इस कारण शरीर का सचालन आत्मा के अनुशासन मे चलना चाहिये। सही सचालक ही जब सचालन करता है तो उसका सचालन ही सही सचालन होता है। आत्मा की स्वय की अनुभूति जाग जाने पर आत्मा का वर्चस्व स्थापित हो जाता है तथा अनुशासन की बागडोर वह सम्हाल लेती है। ऐसी आत्म-नियत्रण की अवस्था मे मनुष्य सोचता है कि बाहर के नाशवान तत्त्व जो बाहर की चमडे की आखो से देखे जाते है, वे आत्मा के अविनाशी स्वरूप के साथ मेल नही खाते है।

आत्मा का निज स्वरूप अविनाशी होता है। वह अजर अमर रूप रखने वाली आत्मा शरीर के भीतर शरीर के प्रत्येक अवयव मे सर्वत्र व्याप्त हो कर उसी प्रकार रह रही है जिस प्रकार पूरी तरह तप जाने के बाद मे लोहे के गोले मे उसके अणु-अणु मे व्याप्त होकर अग्नि रहती है। वह लोहे का गोला हर जगह

से लाल चमकता हुआ दिखाई देता है, बल्कि उसे उस समय लोहे का गोला न कह कर आग का गोला कहने लग जाते है। शरीर के पिड मे आत्मा उसी रूप मे व्याप्त रहती है। इसी प्रकार जैसे मिट्टी के घडे मे पानी भर देने पर वह हर तरफ से गीला दिखाई देता है, पानी के इस गीलेपन की तरह ही शरीर आत्म प्रदेशों से भरा हुआ रहता है। चलना, फिरना, उठना, बैठना, खाना, पीना आदि जो शरीर की समस्त क्रियाएँ दिखाई देती है, वे सब मूल मे आत्म-चालित ही होती है। मुर्दा पिड मे यह सब कुछ नही होता, अत आत्मा सचालक है तथा शरीर आत्मा के सचालन मे ही चलना चाहिये।

आत्मा दिखाई नही देती
महसूस की जाती है

जो जीवन दिखाई देता है, उसमे शरीर प्रधान नही होता, आत्मा प्रधान होती है। इसीलिये ज्ञानीजनो का ध्यान आत्मा की तरफ जाता है और वे अन्तर्मुखी बनने की चेष्टा करते है। आत्मा दिखाई नही देती, महसूस की जाती है। आत्म तत्त्व अनुभूति का विषय होता है। जो आत्म-प्रतीति से आत्मानुभूति तक पहुँच जाता है, वह अपनी आत्मा के स्वरूप को सर्वागत पहिचान जाता है। यही नही, वह अन्यान्य आत्माओ के स्वरूप को भी देखने लगता है। ऐसा अन्तर्मुखी व्यक्ति एक प्रकार से अन्तर्यामी बन जाता है। वह अपनी ही आत्मा को महसूस नही करता, बल्कि ससार की समस्त आत्माओ को अपनी ही आत्मा के समान महसूस करता है।

आप सोचेगे कि आत्मा एक ही है तो उसके भेद कैसे कहे गये है ? ये भेद दृष्टि के भेद होते है। ससार मे आत्माएँ अनन्त है, लेकिन एक ही आत्मा के आठ भेद होते है। दृश्य आत्मा के असख्य प्रदेश है। कषाय आत्मा वाला मनुष्य जब गुस्सा करता है तब उसका सारा शरीर क्रोध से तिलमिला उठता है। उसमे क्रोध या कषाय पैदा हो जाने के कारण उसे कषायात्मा कहते है। जिसमे योग पैदा हो जाता है उसे योगात्मा कह देते है। यह शरीर मन, वचन एव काया के योगो को धारण करता है इसलिये योगात्मा है।

यह भी प्रश्न हो सकता है कि आत्मा रूपी होती है अथवा अरूपी ? रूपी और अरूपी की परिभाषा क्या है ? जिसका रूप दीखता है वह रूपी और जो निराकार हो वह अरूपी। आत्मा रूपी है या अरूपी– इसका स्पष्ट उल्लेख भगवती सूत्र मे आया है। गौतम स्वामी ने यही प्रश्न भगवान् महावीर से किया

तो उन्होने आत्मा को रूपी भी कहा और अरूपी भी कहा– 'रूवी आया अरूवी आया'। आत्मा अरूपी-निराकार तो है ही, लेकिन छ काया के जीव बताये उनके वर्गीकरण के रूप मे आत्मा को रूपी भी कहा है।

कोई कभी कहता है कि आत्मा जब दिखाई नही देती है तो उस पर विश्वास कैसे करे ? उन्हे सोचना चाहिये कि दीखना किसको कहते है ? जिसका भीतर मे स्पष्ट अनुभव हो जाता है, उसे देखना ही तो होता है। चमडे की आखो से ही देखना नही होता है– ये आखे तो केवल स्थूल को देख सकती है। लेकिन जो अन्तर्दृष्टि से अन्तर्मुखी बन कर देखता है वह आत्मा के स्वरूप एव उसकी सूक्ष्म प्रक्रियाओ को भी भली भाति देख सकता है। आत्मा का अस्तित्त्व उसकी अनुभूति से विदित होता है।

आत्म-प्रतीति से आत्मानुभूति और अन्तर्मुखी वृत्ति से निर्लिप्तता

आत्म तत्त्व पर विश्वास हो जाने से आत्मा का अस्तित्त्व स्पष्टत अनुभव मे आ जाता है। दृश्यहीनता से अस्तित्त्व हीनता नही होती है। जो पदार्थ दिखाई भी देते है, लेकिन उनके गुण दिखाई नही देते परन्तु अनुभव से उनका अस्तित्त्व समझ मे आ जाता है। वायु का कोई आकार नही होता– वह दिखाई नही देती तो क्या उसका अस्तित्त्व भी नही होता है ? यह आप सब जानते है कि वायु का अस्तित्त्व तो होता ही है, लेकिन उसका अस्तित्त्व तुरन्त महसूस भी हो जाता है। गरमी से पसीने की बूदे चू रही हो और हवा का हल्का सा झौका आता है तब उसे क्या तुरन्त महसूस नही कर लेते है ? यह तो नही कहते कि हवा दिखाई नही देती इन बाहर की आखो से तो उसको हम महसूस भी नही करते। आत्म-प्रतीति भी तभी होती है जब भीतर मे प्रवेश करने तथा भीतर को समझने की चेष्टा की जाती है। एक बार प्रतीति हो जाय तो फिर अनुभूति आसान बन जाती है। आत्म-प्रतीति से आत्मानुभूति तक पहुँचना कठिन नही होता है। आत्मानुभूति हुई तो अन्तर्मुखी वृत्ति भी बन जाती है। तब अन्तर्मुखी वृत्ति ही प्रबलता ग्रहण करती हुई आत्मा को निर्लिप्तता की पवित्र अवस्था मे ले जाती है। अन्तरात्मा की गति निर्लिप्तता की दिशा मे ही अग्रसर बनती है।

कभी कोई यह प्रश्न भी कर देते है कि सिद्ध भगवान् याने कि परमात्मा रूपी है अथवा अरूपी ? वह अरूपी है, उसका यह अर्थ नही कि उसका अस्तित्त्व नही है। अस्तित्त्व है लेकिन रूपी के रूप मे उसका अस्तित्त्व नही है।

रूपी की परिभाषा के अनुसार उसमे स्पर्श का गुण होना चाहिये। रूपीपना शरीर के साथ रहता है। जब तक रूप है, तब तक वर्ण, गध, रस, स्पर्श सब कुछ है। मोक्ष जाने वाली आत्मा का जब शरीर छूट जाता है तो उस आत्मा मे वर्ण गध रस स्पर्श नही रहेगा। फिर भी उसका अस्तित्त्व तो बना ही रहेगा। परमात्मा मे भी असख्य प्रदेश होते है ओर अवधान होता है। वस्तु स्वरूप होता है तभी अवधान होता है। अवधान की दृष्टि से एक प्रकार से परमात्मा को रूपी भी कह सकते है क्योकि सिद्ध भगवान् सिद्ध स्वरूप मे रमण करते है। अपेक्षा दृष्टि से वे अरूपी और रूपी दोनो होते है। जैन सिद्धान्त स्याद्वाद को लेकर चलता है, एकान्तवाद को लेकर नही। इस दृष्टि से शरीर मे रहने वाली आत्मा हर किसी के सामने स्पष्ट होती है– चाहिये उसकी प्रतीति की अभिरुचि ताकि वह परिपुष्ट बन कर आत्मानुभूति का रूप लेले।

आत्मा अपने आप मे ज्ञान का अनुभव करती है। ज्ञान की शक्ति आत्मा मे ही होती है इसलिये इस ज्ञान की शक्ति को आत्मा प्रत्येक समय मे वहन करती है। ज्ञान से ही आत्मा की प्रतीति और अनुभूति होती है– इसके लिये आकार का होना आवश्यक नही होता है। जल दिखाई देता है लेकिन उसकी शीतलता क्या दिखाई देती है ? सूर्य दिखाई देता है लेकिन उसकी ऊष्मा क्या दिखाई देती है ? और चूकि शीतलता या उष्मा दिखाई नही देती तो क्या उनका तत्काल अनुभव नही हो जाता है ? और उनका अनुभव होता है तो उन्हे अस्तित्त्वहीन कैसे कह सकते है ? ऐसा ही स्वरूप आत्मा का होता है जो प्रतीति और अनुभूति से सबको सर्वथा स्पष्ट हो सकता है।

आत्मा के अरूपी स्वरूप की तरफ जब ध्यान जाता है तो अन्तरात्मा का दृष्टिकोण बनता है। जो अन्तरात्मा का दृष्टिकोण है, उसी का नाम अन्तर्मुखी वृत्ति है। अन्तर्मुखी वृत्ति जब बनती है तो आत्मा के अनुभावो मे सम्यक् दृष्टिपना आता है। उनमे तब सम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था के आत्मिक गुणो का विकास होता है। अनुकम्पा का अर्थ है दूसरो के दुख को देखकर स्वय दुखी अनुभव करना एव उनके दुख को दूर करने का यत्न करना। जो आत्माएँ अन्तर्मुखी बन कर आत्म चिन्तन मे तल्लीन बन जाती है, वे बाहरी पदार्थो के ममत्त्व से भी दूर हो जाती है– लिप्तता से हट जाती है। इस रूप मे अन्तर्मुखी वृत्ति से निर्लिप्तता का विकास होता है।

अन्तरात्मा की प्रवृत्ति होती है– निर्लिप्तता की ओर बढना

अन्तरात्मा बाह्य पदार्थो से जब अपना मुख मोड लेती है तो वह उनकी आसक्ति से भी दूर होती जाती है। वे आत्माएँ भले ही बाह्य पदार्थो को काम मे लेती हुई दिखाई देती है, लेकिन वे उनका उपयोग निर्लिप्त भाव से करती है। आप जानते है कि भरत चक्रवर्ती छ खड के अधिपति थे और सारा शासन कार्य चलाते थे फिर भी वे निर्लिप्त भाव से चलते थे। जैसे भरत चक्रवर्ती निर्लिप्त थे, वैसे ही मनुष्य जब निर्लिप्त बनने के मार्ग पर चल पडता है तो उसका रूपक भी अन्तरात्मा का बन जाता है।

अभी आप कहाँ बैठे है ? आप इस पाडाल मे बैठे है। इस वक्त आपकी क्या भाव धारा चल रही है ? इस पाडाल की भूमि के साथ आपका ममत्त्व भाव नही होगा, लेकिन जिस मकान को आपने अपना समझ रखा है, उसके साथ तो ममत्त्व भाव है न ? इस समय आपके मकान को कोई नुकसान पहुँचावे तो आप को दु ख होगा या नही ? ग्राम पचायत को सम्पत्ति को कोई नुकसान पहुँचावे तो कितना दु ख होगा ? दु ख वही है जहाँ ममत्त्व है। ग्राम पचायत की सम्पत्ति से आपने अपने आपको निर्लिप्त मान रखा है तो आपको दु ख नही होता है, उसी प्रकार अगर अपनी समझी जाने वाली सम्पत्ति पर से भी अपना ममत्व हटाले और उससे निर्लिप्त बन जावे तो फिर उसके नुकसान से भी आपको दु ख नही होगा।

निर्लिप्तता की ओर बढना तथा तटस्थ भाव से रहना– यह अन्तरात्मा की प्रवृत्ति होती है। उसके पास जो कुछ भी सम्पत्ति होती है अथवा जिन किन्ही पदार्थो को वह अपने उपयोग मे लेती है, उनके प्रति भी अपनी कोई ममता या लिप्तता नही रखती है। ममता या लिप्तता नही होती है तो उनके सम्बन्ध मे किसी प्रकार का खेद भी नही होता है। खेद नही होता तो उनकी प्राप्ति पर कोई हर्ष भी नही होता है। अन्तरात्मा का ऐसी मन स्थिति मे साम्य योग जागृत हो जाता है। ऐसी अन्तरात्मा योगात्मा बन जाती है।

निर्लिप्तता आत्मा को आत्मस्थ बना देती है और आत्मस्थ हो जाने से वह स्वस्थ हो जाती है। स्वस्थ आत्मा ही अपने परिणामो की सर्वोच्चता के साथ परमात्म स्वरूप का वरण करती है।

निर्लिप्तता की अवस्था मे कैसी भव्य निश्चिन्तता होती है ?

निर्लिप्तता की अवस्था मे कैसी भव्य निश्चिंता होती है– इसके सम्बन्ध मे एक घटना याद आ गई है। आगरा के ताजगज मे बहुतेरे मकान सम्पन्न व्यक्तियो के है। एक बार आधी रात को एक नौजवान लुकता-छिपता और दरवाजो को धक्का देता इसी मोहल्ले मे घूम रहा था कि कोई दरवाजा खुल जाय तो वह भीतर घुस कर चोरी करले। आखिर एक कपाट पर उसने ठोकर लगाई और वह खुल पडा। अन्दर घुस कर उसने देखा तो एक व्यक्ति एक चटाई पर बैठा दिखाई दिया। उसको लगा कि वह व्यक्ति बैठा-बैठा नीद ले रहा है सो उसने धीमे से वहॉ जो बर्तन और वस्त्र पडे थे उनकी एक पोटली बाधी– रुपये पैसे वहॉ नही थे। जब वह पोटली उठाने लगा तो वह बडी भारी मालूम हुई। बार-बार उसने उसको उठाने की कोशिश की लेकिन वह उससे उठी नही। यह देखकर वह व्यक्ति चटाई पर से उठा और उसने सहारा देकर चोर नौजवान को पोटली उठवा दी। वह तो पोटली लेकर भागा, भागने की धुन जो थी। उसे ध्यान ही नही रहा कि उसको वह पोटली किसने उठवा दी ?

पोटली लेकर वह घर पहुॅचा तो उसने अपनी मॉ से पोटली जल्दी उतरवाने को कहा। मॉ बेटे की चोरी की आदत से बहुत दु खी थी मगर मजबूर भी थी। उस ने पोटली उतरवा कर पूछा– तू ऐसे घर से माल क्यो लाया जहॉ रुपया पैसा कुछ नही था ? लेकिन इतनी भारी पोटली तेने उठाई कैसे ? वह बोला– मॉ, मुझे लगता है कि मकान मालिक ने ही सहारा देकर यह पोटली मुझे उठवाई । मॉ को भी ताज्जुब हुआ कि मकान मालिक अपने ही माल की पोटली उठाने मे चोर को सहारा दे– ऐसा कौनसा मकान है ? मॉ को ध्यान आया तो बोली– कही तू बनारसीदास कवि के घर तो नही चला गया था ? क्योकि वे अपने ही घर मे भी बिल्कुल निर्लिप्त भाव से रहते है। तू ने शायद उन्ही के घर मे चोरी की है। वह साधु है और बादशाह का माना हुआ है– कही बादशाह तक खबर पहुॅच गई तो खैर नही।

मॉ की बात सुनकर नौजवान घबराया और पोटली उठाकर वापिस उसी घर की ओर भागा। घर मे जाकर पोटली उसने नीचे रख दी और कवि जी से माफी मागने लगा। कवि ने कहा– तुमने यह सामान ले जाकर मुझ पर बडा उपकार किया था– यह मेरे लिये कटक रूप था, लेकिन तुम इसे वापिस क्यो ले आये ? इसे वापिस ले चले जाओ मेरे भाई ! चोर इनकार करता रहा और वे ले जाने को कहते रहे । इस खीचातानी मे सवेरा हो गया और आवाज सुनकर कई लोग इकट्ठे हो गये। चोर मन मे डरने लगा कि अब तो रगे हाथो

पकडा जाऊगा। उधर कवि जी ने सोचा कि चोर ने मेरा उपकार किया तो मेरा मित्र हो गया है इसलिये इसकी मदद करनी चाहिये। आन्तरिक दृष्टि वाले का ऐसा ही विचार बनता है।

लोगो के सामने कवि जी फट बोल पडे– यह मेरा मित्र है, बाहर से आया है और उससे बाते करने लगे। लोगो ने समझा कि मित्र ही है और वे चले गये। नौजवान चोर तो पानी-पानी हो गया और कवि जी के पावो मे गिर कर कहने लगा–आप ने मुझे पुनर्जन्म दिया है–अब मै इस अपराध को छोड दूगा।

कवि बनारसीदास ने कहा– कोई भी पदार्थ किसी के साथ चलने वाला नही है। व्यर्थ मे इन पदार्थो के पीछे ममत्त्व रखकर तुमको कष्ट दू यह मुझे अच्छा नही लगा– इसलिये पोटली मैने ही उठवा दी और अब भी तुमको उपकारी मित्र मान रहा हूँ।

वास्तव मे जिसका लक्ष्य अन्तर्मुखी बन जाता है, उसकी लिप्तता भी समाप्त हो जाती है। उसका जीवन निर्लिप्त बन जाता है और निर्लिप्त बनता है तो पूर्णत्या निश्चित भी बन जाता है।

जो निर्लिप्त है, वह निर्विकार है और निर्विकार आत्मा परमात्मा होती है

आध्यात्मिक ज्ञान का क्या विवेचन किया जाय जो बहिरात्मा से अन्तरात्मा बन जाता है, वह दुश्मन को भी गले लगाता है, सज्जनो को स्नेही बनाता है तथा जगत् के समस्त प्राणियो को मित्र मानकर चलता है। घर का माल ले जाने वाले को भी शत्रु नही, मित्र समझता है और बाह्य पदार्थो पर किचित् मात्र भी ममत्त्व नही रखता है। अन्तर्स्वरूप को पकडने का दृष्टिकोण तभी बनता है जब अपूर्व अवसर प्राप्त होता है। ऐसे अपूर्व अवसर को प्राप्त करने की भावना से ही आप व्याख्यान स्थल पर आते है और बराबर व्याख्यान सुनते जाते है, फिर भी क्या आपको अपूर्व अवसर नही मिलता है ?

उस अपूर्व अवसर को इच्छापूर्वक प्राप्त करे और अपने आपको अन्तरात्मा के रूप मे बदले । अन्तर्मुखी वृत्ति को अपनावेगे तो आपकी भावना मे निर्लिप्तता उत्त्पन्न होगी। जो निर्लिप्त होता है, वही निर्विकार बनता है। निर्विकार हो जाने पर आत्म-स्वरूप परम उज्ज्वल हो जाता है। परम उज्ज्वलता ही परमात्मा स्थिति होती है और निर्विकार आत्मा परमात्मा बन जाती है।

परमात्मा बनने के लिये पहले अपने स्वरूप को बाहर से समेटिये और अन्तरात्मा बनिये । अन्तरात्मा बनेगे तो आध्यात्मिक सम्पत्ति के स्वामी भी बन जायेगे।

नोखा २०.१०.७६ ❑❑❑

13

संगति, वृत्ति एवं भविष्य दृष्टि

सुमति चरण रज आतम अर्पणा
दर्पण जेम अविकार, सुज्ञानी

सुमतिनाथ भगवान् के चरणो मे प्रार्थना की पक्तियो के माध्यम से भव्य जनो के श्रद्धावनत होने का जो प्रसंग है, वह बडा ही भव्य है।

इस माध्यम से परमात्म-स्वरूप की सगति मे पहुॅचने का सुअवसर मिलता है। सगति जैसी होगी, वैसी ही चित्त की वृत्तियो का निर्माण होगा। बहिरात्मा जब परमात्म स्वरूप की सगति मे जाती है तो वह भी उस स्वरूप से प्रभावित हुए बिना नही रहती है। वह उस समय स्वरूप तुलना करने लग जाती है तो अन्तरात्मा के रूप मे परिवर्तित होना आरभ कर देती है और जो अन्तरात्मा है, वह अपने साधना पथ पर अधिक एकाग्र होकर गमन करती है। सगति से वृत्ति शोधन होता है तथा वृत्तियॉ जिन अशो मे शुद्ध बन जाती है, उतने ही अशो मे उस आत्मा की भविष्य दृष्टि स्पष्टता ग्रहण करती है। आत्मशुद्धि भविष्य दृष्टि की परिचायक बन जाती है।

आत्मा की वृत्तियो-प्रवृत्तियों पर संगति का प्रभाव

आत्मा की वृत्तियो एव प्रवृत्तियो पर सगति का प्रभाव निश्चित रूप से गिरता है। यह आत्मा जिस वस्तु के पास पहुॅचती है, उस वस्तु के स्वरूप से प्रभावित हुए बगैर नही रहती है। जहॉ चैतन्य तत्त्व की सगति उसे प्राप्त होती है तो वहॉ उस चैतन्य स्वरूप के समीप पहुॅच कर उसके भीतर के और बाहर के जितने भी गुणो को वह परखती है, उन गुणो के प्रभाव से वह प्रभावित भी

बनती है।

ससार के सामान्य वातावरण मे भी सगति का प्रभाव बखूबी देखा जा सकता है। एक दुर्गुणी व्यक्ति अपने मन मे दुर्गुणो के कलुषमय विचारो को पालता पोषता है और घात प्रतिघात के विचित्र ताने बाने बुनता हुआ अपने वचन एव व्यवहार मे भी विविध रूप बनाये रखता है। ऐसे दुर्गुणी व्यक्ति के ससर्ग मे चाहे सरल व्यक्ति भी चला जायगा, तब वह भी कुछ न कुछ बुरा असर तो ले ही लेगा। तभी तो कहावत बनी है कि काले के पास जो बैठेगा, वह वर्ण नही, उसके लक्षण तो ले ही लेगा। काला हृदय कलुष छोडेगा ही। और जो कलुष की सगति करेगा, उसे अपनी शान्ति खोनी पडेगी।

दूसरी ओर जितने भी सद्गुणी पुरुष होते है, उनके जीवन मे श्रेष्ठ विचार एव श्रेष्ठ आचरण के कारण बडी पवित्रता होती है तथा व्यवहार मे सदाशयता होती है। ऐसे पुरुषो की सगति मे दुर्गुणी और दुष्ट व्यक्ति भी चला जायगा तो वह कुछ समय के लिये ही क्यो न हो– अपनी दुष्टता भूल जायगा। दुर्मति वाले व्यक्ति के आचरण पर भी उनके गुणो का प्रभाव पडेगा। उसे अपने अशान्त जीवन में भी यत्किचित् शान्ति का अनुभव होगा। तीर्थकर देव की परम पवित्रता के सामने सिह भी अपनी क्रूरता भूल जाता है और बकरी के साथ निर्वैर भाव से बैठता है। इस प्रकार सद्गुण या दुर्गुण की सगति मे उसके घनत्व के अनुसार वृत्तियो पर असर पडेगा ही।

इसी सिद्धान्त के धरातल पर प्रत्येक आत्मा प्रार्थना के माध्यम से परमात्म स्वरूप को अपने स्मृति पटल पर लावे। परमात्मा का जो परम शुद्ध रूप है तथा जो सदा सर्वदा के लिये पवित्र बन चुका है, उस पवित्र रूप की प्रार्थना यदि मनुष्य प्रतिदिन करता रहे एव उसक गुणो का चिन्तन करता रहे तो उसकी वृत्तियो एव प्रवृत्तियो मे पवित्रता का प्रवेश होगा ही। वह गुण सगति अवश्य प्रभावशाली सिद्ध होगी।

वृत्तियो के प्रमुख प्रकार एव भावना मे गुणशीलता

मनुष्य के मन मे प्रमुख रूप से दो प्रकार की वृत्तियॉ सचालित होती रहती है। एक दुर्वृत्ति होती है तो दूसरी सद्वृत्ति। दुर्वृत्ति के वशीभूत होकर मनुष्य बुराई सोचता है, बुराई बोलता है और बुराई करता है। बुराई का नतीजा बुरा होता है और आखिर जाकर बुरा मनुष्य दु खी बनता है। जब तक वह अपनी दुर्वृत्ति को सशोधित नही बनाता है तब तक दु खी बना रहता है। इसके विपरीत

सद्‌वृत्ति वाला मनुष्य स्वय से भी पहले दूसरो की भलाई के लिये सोचता है तथा अपना त्याग करके भी दूसरो की भलाई करता है। वह दूसरो को सुखी बनाता है और उनके सुख को देखकर स्वयं भी सुखी होता है। वह अपने जीवन मे सदैव सुख और शान्ति के साथ चलता है।

सद्‌वृत्ति की मूलाधार होती है सन्मति तथा सन्मति सगति से पैदा होती है। जब भगवान् सुमतिनाथ की प्रार्थना की जाती है तो सुमति के खजाने से सुमति अवश्य मिलती है। जो सुमतिनाथ भगवान् की प्रार्थना करते हुए– उनकी सुसगति से आत्मिक गुणो को अपनाते हुए उनके मार्ग पर अपनी आत्मा का अर्पण करते है, एक दिन वे भी विपुल सुमति के स्वामी बन जाते है।

सुमति की साधना मे जो अपनी बुद्धि को लगाते है, उन्हे सुमतिनाथ भगवान् के गुणों से अवश्य ही प्रेरणा मिलती है। तब वह साधक उन गुणो को अपने जीवन मे उतारता है और धीरे-धीरे अपनी बुद्धि मे वाछित परिवर्तन लाता है। उस परिवर्तन को उसके व्यवहार और आचरण से बाहर वाले भी अनुभव करते है। जिसमें पवित्रता का गुण विकसित हो जायगा, उसका व्यवहार भी सब के साथ पवित्रता का होगा क्योकि उसके विचार और वचनो मे भी पवित्रता रहेगी। पवित्र बुद्धि वाला याने सुमति वाला व्यक्ति किसी के साथ दुर्भावना का व्यवहार नही करता है और वैसे शुभ व्यवहार से दुर्मति वाला व्यक्ति भी प्रभावित होता है तथा अपने दुर्व्यवहार को छोड कर सद्‌व्यवहार करना सीखता है। सुमति का सुप्रभाव दोनो ओर होता है।

सुमति के प्रभाव से वृत्तियो मे पवित्रता का समावेश होता है तो भावना मे गुणशीलता पनपती है। यह अन्तरात्मा की स्थिति का प्रसग बनता है। इसलिये कवि ने संकेत दिया है कि इस शरीर की भी आत्मा साक्षी है याने कि यह शरीर भी आत्मा का नही है। आत्मा को तटस्थ दृष्टा के रूप मे तटस्थ भाव से शरीर को देखना चाहिये। जब शरीर को आत्मा से विलग करके देखा जाता है तो सभी बाह्य पदार्थो के प्रति दृष्टि मे तटस्थ भाव आ सकता है। शरीर को साधन-सुविधाओ, मकान, धन, वैभव आदि सभी वस्तुओं के प्रति तब मन की वृत्तियो का लगाव कम हो जाता है, जो धीरे-धीरे खत्म भी हो सकता है। तब उन वस्तुओ की टूट-फूट से मन की टूट-फूट नही होती है अर्थात् व्यर्थ की वस्तुओ के लिये मन कष्ट नही पाता है। यह एक प्रकार से तदनुरूप वृत्तियो के निर्माण की तथा भावना मे वैसी गुणशीलता विकसित करने की बात है।

आन्तरिक शक्ति के निर्माण से भविष्य दृष्टि का विकास

वृत्तियो एव भावनाओ मे जब सद्गुणो का समावेश होता है तो उस व्यक्ति के भीतर उसकी आन्तरिक शक्ति सुदृढ बनती है– वह प्रभावशाली स्वरूप ग्रहण करती है। जिस व्यक्ति के जीवन मे आन्तरिक शक्ति का निर्माण हो जाता है, वह अपने जीवन की समुज्ज्वलता इसी वर्तमान जीवन मे प्राप्त कर सकता है। कदाचित् इस जीवन मे पूर्व की कोई वैर वृत्ति रही हो तो उसकी समाप्ति के बाद भविष्य मे वृत्तियो का सदाशय पूर्ण स्वरूप ही सामने आवेगा। भविष्य के विकास का भी वह स्वय निर्माता बन सकेगा। वर्तमान की क्या– भविष्य की बाते भी जैसे उसके सामने तैरती रहेगी। उसकी भविष्य दृष्टि मे सब कुछ जानना सुगम हो जायगा। आन्तरिक शक्ति के निर्माण से भविष्य दृष्टि का समुचित विकास हो जाता है।

भविष्य को अपने सामने देखने की कई विधियॉ होती है। लेकिन भविष्य की बात यथार्थ रीति से इस आन्तरिक शक्ति के द्वारा ही जानी जा सकती है। कोई व्यक्ति अपने भविष्य को समझना चाहता है तो वह ज्योतिषियो के पास जाता है। उन्हे अपनी जन्मपत्री दिखाकर भविष्य की बाते जानना चाहता है। ज्योतिषी लोग गणित के आधार पर कुछ बाते बतलाते है जिनमे से कुछ मिलती हैं, कुछ नही मिलती है, क्योकि गणित जैसी चाहिये वैसी नही निकलती है तो भविष्य का सही अकन नही किया जा सकता है। किन्तु यदि सत्वृत्तियो के कारण जिसका जीवन पवित्र बन जाता है तो उस पवित्रता से उस आन्तरिक शक्ति विकास से कुछ अवधिज्ञान की उपलब्धि सभव बन जाती है। अवधिज्ञान की उपलब्धि से भविष्य की "रूपी पदार्थो से सम्बन्धित बाते" देखी जा सकती है। अवधिज्ञान का तात्पर्य यह है कि सुदूर भविष्य की बातो को वह जान सकता है। ऐसी भविष्य दृष्टि विरली ही आत्माओ को प्राप्त होती है, क्योकि इस अवधिज्ञान की उत्पत्ति आवश्यक आन्तरिक शक्ति के निर्माण से ही हो सकती है।

कभी-कभी कोई व्यक्ति उस स्तर तक नही पहुँचता है, लेकिन अपनी निर्मल बुद्धि से भी यत्किचित् भविष्य दृष्टि प्राप्त कर सकता है। यह उसके मन-मस्तिष्क की प्रशान्तता से सम्बन्धित है। मनुष्य जितना सभी प्रकार से शान्त रहता है, उसका मन-मस्तिष्क पवित्र होता है और उस पवित्रता के पटल पर भविष्य का चित्रण आ सकता है। कभी-कभी ऐसे व्यक्ति स्वप्न भी देखा करते है जिनमे भावी घटनाओ का सकेत रहता है।

स्वप्न की दृष्टि भी एक विचित्र प्रकार की दृष्टि होती है। स्वप्न बहुतेरे व्यक्ति देखते है और यहाँ बैठने वाले व्यक्ति भी शायद कितने ही स्वप्न देख चुके होगे। गत रात्रि मे भी कितने ही व्यक्ति स्वप्न देखकर आये होगे, लेकिन उनमे से कितना क्या याद रहा ? याद नही रहा तो क्यो नही रहा ? ऐसा क्यो होता है ? अधिकांश स्वप्न तो मानसिक इच्छाओ तथा कल्पनाओ से बनते है। इन इच्छाओ मे भी अतृप्त इच्छाएँ स्वप्न मे प्रकट होती है। मनुष्य जो मन मे सोचता है तो उसको प्राप्त करने की चेष्टा करता है, फिर भी जब वह इच्छित वस्तु को प्राप्त नही कर सकता है तो अत्यधिक लगाव के कारण वह उस वस्तु को स्वप्न मे देख लिया करता है। उदाहरण के तौर पर यदि चौविहार उपवास कर लिया और रात्रि मे जल्दी से प्यास लग गई तो वह सोकर स्वप्न देखेगा कि एक बडा सरोवर है, वह उसमे डूब रहा है ओर 'पानी पानी' चिल्ला रहा है। पानी पेट मे जा रहा है, मगर प्यास नही बुझ रही है। इस प्रकार का स्वप्न उसके दिन के कार्य या विचार का परिणाम होता है। लेकिन दैनिक चर्या के फलस्वरूप स्वप्न दीखे ही– ऐसा कोई नियम नही है।

भविष्य दृष्टि के संदर्भ मे स्वप्नो के स्वरूप पर विचार

स्वप्न कई प्रकार के होते है। इनमे भविष्य की सूचना देने वाले स्वप्न भी होते है। कोई शुभ घटित होने वाला है अथवा अशुभ– इसका द्योतन करने वाले स्वप्न भी होते है। इसका ज्ञान रखने वाला व्यक्ति अशुभ से बच भी सकता है तथा शुभ से लाभ भी उठा सकता है। लेकिन ऐसी क्षमता प्रत्येक व्यक्ति मे नही होती है। जिसकी संगति श्रेष्ठ होती है, वृत्तियो मे विशुद्धता आती है तथा आत्मा निर्मल बनती है, उसी व्यक्ति के लिये ऐसा प्रसग उपस्थित हो सकता है।

महावीर प्रभु के समीप जाने वाले जितने भी श्रोतागण थे, उनमे सब तरह के लोगो के उपस्थित होने का उल्लेख मिलता है। उनमे से कई ऐसे भी थे जिनके मस्तिष्क मे रात और दिन प्रभु के शासन की हित कामना चलती थी। यह चतुर्विध सघ तीर्थकरो का बनाया हुआ सघ है। इसमे आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक समस्याएँ इतना महत्त्व नही रखती, जितना महत्त्व आन्तरिक समस्याएँ रखती है क्योंकि मूल मे आन्तरिकता का ही प्रश्न होता है जिसके आधार पर अन्य सारी समस्याओ का समाधान निकाला जाता है। आन्तरिक समस्या के सही समाधान के बिना सब शून्य रहता है। आन्तरिक जीवन को

पवित्र बनाना यह इस सघ का पहला उद्देश्य है। इसलिये इस संघ के प्रति सबकी हितकामना रहनी चाहिये। ऐसी हितकामना रखने वाले व्यक्ति अपने हृदय मे पवित्रता का सचार कर लेते है और तब वे जो स्वप्न देखते है, उनमे भावी घटनाओ का सकेत मिल सकता है तथा सघ का भविष्य भी दिखाई दे सकता है।

स्वप्न के रूप मे ऐसा सकेत कौन देता है ? तरह-तरह के माध्यम हो सकते है। कभी शासन हितैषी देवी देवता शासन के हित अर्हत् को अपने अवधिज्ञान से जानकर सम्बन्धित व्यक्ति को स्वप्न के माध्यम से सकेत कर देते है जिससे शासन के बारे मे भविष्य का आभास होता है। कभी स्वत ही ऐसा प्रसग बनता है जिससे पता चल जाता है कि सुदूर भविष्य मे इस सृष्टि के रगमच पर कौनसी घटनाएँ घटित होने वाली है और उनका चित्रण स्वप्न मे आ जाया करता है। यह कैसे आता है– इस विषय मे बडी गहनता की स्थिति है। फिर भी आप थोडी सी स्थिति को ध्यान मे ले। कोई सरोवर के किनारे पर खडा होकर पानी मे ककर डाले तो उस ककर के गिरते ही पानी मे लहरे पैदा हो जाती है जो दूर-दूर तक पहुँचती है। यदि समुद्र की लहरो का ज्ञान रखने वाली कोई आत्मा है तो वह उस लहर को देखकर ककर का अनुमान लगा लेती है। इस प्रकार का ज्ञान बडा गहरा होना चाहिये। कभी-कभी ऐसी स्थितियाँ भी पृथ्वी पर, समुद्र मे अथवा विराट् आकाश मे इस प्रकार की बनती है जिन से न्यूनाधिक रूप मे भवितव्य की सूचना मिल जाती है। किन्तु ऐसी सूचनाओ को निर्मल बुद्धि वाला व्यक्ति ही ग्रहण कर सकता है– सभी व्यक्तियो के वह सामर्थ्य की बात नही होती है। ऐसे प्रसग पूर्व मे घटित हुए है, वर्तमान मे घटित होते है तथा भविष्य मे भी घटित होगे।

राजा हस्तिपाल के स्वप्न और विचित्र भविष्य दृष्टि

महावीर प्रभु का अन्तिम चातुर्मास राजा हस्तिपाल द्वारा शासित पावापुरी नगरी में हुआ था। हस्तिपाल एक शासननिष्ठ श्रावक थे और यह शासन महावीर प्रभु का आध्यात्मिक शासन था, कोई राजकीय शासन नही। उस समय हस्तिपाल महाराज द्वारा भी स्वप्न देखने का प्रसग बना जिनका अर्थ विन्यास स्वय महावीर भगवान् ने किया। स्वप्नो के इस प्रसग को प्राय करके दीपावली के दिनो मे स्मृति पटल पर लाया जाता है और आज धन तेरस का त्यौहार है जिसके साथ केवन्नाजी का प्रसग भी जुडा हुआ है।

हस्तिपाल के स्वप्न और उनके अर्थविन्यास बहुत कुछ मौलिकता के साथ आज भी उपलब्ध है। यह प्रसग कविता की कडियो मे गुथा हुआ है जो इस प्रकार है–

हस्तिपाल रा सपना, वीर वताविया रे।
अन्तिम धर्म देशना देके, मोक्ष पधारिया रे।।

अप्पापुरी प्रभुजी खास, हस्तिपाल कचहरी आवास,
कुतुमादिक सघ चरम चौमास,
दे दे धर्म देशना प्रभुजी, भविजन तारियारे।

हस्तिपाल की कचहरी मे भगवान् महावीर द्वारा अपने अन्तिम चातुर्मास के निमित्त ठहरने का मतलब है कि किसी उद्यान मे नही, बल्कि नगरी के मध्य मे ठहरे हुए थे। यह अन्तिम चातुर्मास था– इस बात से उस समय की जनता पूर्ण रूप से परिचित थी। कारण, जिस वक्त गौशालक ने प्रभु महावीर पर उपसर्ग उपस्थित करके तेजोलेश्या छोडी थी, उस समय के प्रसग से गोशालक और प्रभु महावीर के बीच मे जो कुछ सवाद हुआ तथा एक दूसरे के अनुयायियो के बीच मे जो कथन हुआ उस से अन्तिम चातुर्मास के तथ्य का पता चल गया था। उस अन्तिम चातुर्मास मे महत्त्वपूर्ण धर्म देशनाएँ हुई तथा कई विशिष्ट पुरुषो ने मार्गदर्शन ग्रहण किया। इसी चातुर्मास मे हस्तिपाल ने भी अपने स्वप्न प्रभु को सुनाये तथा प्रभु ने उनका अर्थ बता कर भविष्य की रूपरेखा स्पष्ट की।

प्रभु मै देख्या सपना आठ, करि कपि, क्षीर तरूका घाट
वायस सिह कमल का ठाठ,
बीजोरे कुभ आठवो देखी, भय मन पामिया रे।

हस्तिपाल ने निवेदन किया– 'प्रभु, मैने आठ स्वप्न देखे। पहले स्वप्न मे हाथी देखा जो बहुत सुन्दर और श्रेष्ठ था, लेकिन कीचड मे फसा हुआ था– 'कोशिश के बावजूद कीचड से निकल नही पा रहा था।

दूसरा स्वप्न एक बन्दर का देखा जो अपने विशाल परिवार के साथ एक बगीचे मे घुस गया जहॉ वह और सभी फलफूल खाते कम थे लेकिन उजाडते ज्यादा थे। बगीचा तहस नहस हो रहा था।

तीसरे स्वप्न मे एक क्षीर तरू दिखाई दिया। वह क्षीर तरू ऐसे विषैले जन्तुओ से घिरा हुआ था कि कई व्यक्ति जो उससे लाभ उठाना चाहते थे, वे लाभ नही उठा पा रहे थे।

चौथे स्वप्न मे एक कौवे को देखा जिसके चारो ओर सुन्दर-सुन्दर

पकवान पडे हुए थे, मगर वह उनमे अपनी चोच कम डालता था लेकिन दूर पडी हुई अशुचि मे बार-बार चोच डाल रहा था।

पांचवे स्वप्न में विकराल सिह देखा। उससे सारे जगली जानवर थर-थर काप रहे थे, लेकिन उस वनराज के शरीर मे कुछ कीडे पैदा हो गये थे, जिनसे वह सिंह बहुत ही संत्रस्त हो रहा था।

छठे स्वप्न मे एक कमल दिखाई दिया। कमल सामान्य रूप से जल मे होता है लेकिन वह कमल उखरडे (अशुचि का स्थान) पर उगा हुआ था।

सातवा स्वप्न एक किसान का था जो ऐसी ऊसर भूमि मे बढिया बीज बो रहा था जिस पर एक कण भी पैदा होने की आशा नही थी।

आठवा स्वप्न मे ऐसा कुभ कलश दीखा, जो मागलिक स्थान पर नही, बल्कि एक कोने मे पडा हुआ था जिसको कोई देख तक नही रहा था।

ये स्वप्न सुनाकर हस्तिपाल ने निवेदन किया भगवन्, मैने ऐसे स्वप्न क्यो देखे ? इनमे क्या विचित्र भविष्य दृष्टि दिखाई दे रही है ? इन स्वप्नो का क्या अर्थ विन्यास है ? यह जानने के लिये मै आपके चरणो मे उपस्थित हुआ हूँ।

स्वप्नो की विचित्रता
तथा अन्तर्चेतना की पहिचान

ये स्वप्न एक तरह से विचित्र थे। सामान्यतया भी कई व्यक्ति कई बार विचित्र-विचित्र स्वप्न देखते है लेकिन असावधानी से सोच लेते है कि स्वप्न तो आते ही रहते है, उनका कोई फल तो मिलता नही है। आज के वैज्ञानिक युग मे इन स्वप्नो के सम्बन्ध मे गहरा अनुसधान किया जा रहा है। प्रसिद्ध मनोचिकित्सक डॉ ए वी कुहरिच ने स्वप्नो के सम्बन्ध मे कई पुस्तके लिखी है। उनकी एक ताजा प्रकाशित पुस्तक है"–बियोन्ड टेलीपेथी "। इस पुस्तक मे एक गृहिणी के साथ गुजरी घटना का चित्रण किया गया है। वह अपने शयन कक्ष मे सोई हुई थी। बडे सवेरे उसने एक स्वप्न देखा। स्वप्न बडा विचित्र था। उसने देखा कि उसका पुत्र जॉन कही जा रहा था और मार्ग मे वह दुर्घटनाग्रस्त हो गया। उसके शरीर से सारा खून निकल गया और वह सफेद हो गया। उठते ही उसने अपने पुत्र का फोन मिलाया तो कहा गया कि वह कही बाहर गया हुआ है। दोपहर तक तो उसके बेटे के वहॉ से फोन मिला कि जॉन कार से दुर्घटनाग्रस्त हो गया था, लेकिन सयोग से बच गया है। यह घटना बडे सवेरे ही घटित हुई थी । यह स्वप्न डॉ कुहरिच को बताया गया और उसने इसे टेलीपेथी से भी ऊपर की घटना कहा। ऐसे स्वप्न मानव-मस्तिष्क की ग्रहण

शक्ति से भी सम्बन्ध रखते है, जो बेतार के तार की तरह दूर की घटनाओ सम्बन्धी सूचना को भी ग्रहण कर लेती है।

यदि सूचना देने वाला तनाव रहित मस्तिष्क से सूचना देगा और सूचना ग्रहण करने वाला शान्त मस्तिष्क से सूचना ग्रहण करेगा तो उसमे दूरी का कोई प्रश्न नही रहता– अन्तर्चेतनाएँ आपस मे अपना सम्बन्ध जोड लेती है तथा अन्तर्चेतना के धरातल पर सवादो का आदान प्रदान हो सकता है।

स्वप्नो की विचित्रता मे अन्तर्चेतना की पहिचान मुख्य बात हो जाती है। एक ऐसी ही घटना और है। दो बहिने थी। वे किसी वैज्ञानिक साधन का उपयोग नही करती थी, लेकिन लम्बी दूरी पर बैठी हुई भी एक दूसरी से बाते कर सकती थी और एक दूसरी की बाते सुन सकती थी। सैकडो मील की दूरी भी इसमे बाधक नही होती थी। वैज्ञानिको ने परीक्षण किये तो सब कुछ सही निकला। यह क्या विचित्रता है ? मन की एकाग्रता से उत्पन्न शक्ति द्वारा ही ऐसा हो सकता है। स्वप्नों की विचित्रता हो या अन्य प्रकार की विचित्रता– उसमे अन्तर्चेतना की ही सूक्ष्म तरगें कार्य करती रहती है, जिनकी पकड भौतिक विज्ञान की सहायता से नही हो सकती है। उनको समझना है तो महावीर प्रभु द्वारा उपदेशित आध्यात्मिक विज्ञान की वैचारिक एव व्यवहारिक साधना का ही अनुसरण करना होगा।

पचमकाल की विचित्रताएँ
स्वप्नों का महावीर द्वारा अर्थ विन्यास

हस्तिपाल के स्वप्नो का क्रमश· महावीर प्रभु ने अर्थ विन्यास करके पचम काल की विचित्रताओ पर प्रकाश डाला।

पाकर क्षणिक सिद्धि का सुख, होंगे मूढ धर्म से मूक
घर मे रहकर देवे दु ख,
पर चक्री भय पाप न छोडे, घर द्वारिया रे।
कदाचित् दीक्षा जो कोई लेवे, फिर वे कुसगति मे रेवे।
लीधा महाव्रत तोडि देवे,
विरला पाले सयम, प्रकटी करे फल दाखिया रे।

प्रभु महावीर ने पहले स्वप्न का अर्थ बताया कि पचमकाल मे उस सुन्दर हाथी के समान गृहस्थ लोग क्षणिक ऋद्धि, प्रतिष्ठा आदि तो प्राप्त कर लेगे, किन्तु अभिमान के कीचड मे ऐसे फसे रहेगे, जहाँ से निकलना कठिन होगा।

क्षणिक सुख को ही वे प्रमुखता देगे और धर्म को भुला देगे। इस अर्थ-विन्यास को आज के जमाने पर लागू करके तो देखिये कि क्या आज ऐसी मनोदशा चल रही है ? देखेगे तो दिखाई देगा कि जीवन मे शान्ति नही है, हार्दिकता नही है और धार्मिकता भी नही है। दीक्षा लेकर भी साधु अभिमान से छुटकारा नही पाता है और महाव्रत तक तोड डालता है। यह सब और कीचड वृत्ति क्या वर्तमान युग मे नही चल रही है ?

कपि स्वप्न का फल है ऐसा, गच्छ नायक चचल कपि जैसा
व्रत पालन मे ढीला कैसा,
निश्चल धर्मधारी को, धर्म से दूर कराविया रे।

दूसरे कपि– स्वप्न का अर्थ यह है कि पचमकाल मे धर्म के नाम पर कई सम्प्रदाय और गच्छ कायम हो जायेगे जिनके नायक बन्दर की तरह चचल वृत्ति के होगे । वे व्रत पालन मे शिथिल होगे, लेकिन धर्म के बगीचे मे तहस नहस ही ज्यादा करेगे।

क्षीर तरू सम दानी वीर, शासन पूजक श्रावक धीर
जिनका हृदय निर्मल नीर,
ऐसे श्रावक जन को, लिगधारियो ने घेरियाजी।

तीसरे स्वप्न के अनुसार पचमकाल मे जो धीर, वीर था निर्मल हृदय वाले श्रावक भी होगे, वे विषैले जन्तुओ की तरह लिगधारियो से याने कि प्रपची लोगो से घिरे हुए रहेगे । ये लिगधारी नामवरी के पीछे दौडेगे और श्रेष्ठ श्रावको को भी फुसलाते रहेगे । वे जमाने के साथ चलने की बात कहेगे लेकिन साधु वृत्ति पर ज्यादा जोर नही देगे। वे आडम्बरी होगे और विकृत मनोवृत्ति वाले लोग उनके पीछे हो जायेगे।

चौथे स्वप्न मे देखी गई काक-वृत्ति के अनुरूप लोग मोक्ष मार्ग को समझने के लिये चरित्र सम्पन्न महात्माओ के पास तो कम जायेगे, लेकिन आडम्बरी, क्रियाशिथिल तथा नामधारी साधुओ के साथ ज्यादा लगेगे। धर्म के नाम पर विकार और भ्रष्टता के आचरण को लोग ज्यादा पसन्द करेगे। भिष्टावृत्ति बढेगी। आज साधुता मे भी ऐसा ही घटित हो रहा है। साधु नही स्वादु अधिक हो गये है, रेल मोटर से यात्रा करने लगे है तथा परिग्रह भी रखने लगे है।

पाचवे स्वप्न मे अपने ही शरीर के कीडो से सत्रस्त सिह के समान जिन शासन का अनुयायी शासन के सशक्त सिद्धान्तो के आधार पर शक्तिशाली तो होगा लेकिन अपने ही समाज मे पनपने वाली कलुषित एव विकारपूर्ण वृत्तियाँ

उस शक्ति को निसत्त्व बना देगी।

छठे स्वप्न मे कमल की स्थिति के अनुसार बडे और कुलीन कहलाने वाले लोगो के घरो मे वास्तव मे त्यागी व्यक्ति अधिक पैदा नही होगे बल्कि कमल उन घरो मे पैदा होगे जिनको सामाजिक मान्यता की दृष्टि से नीच और अकुलीन मानते है। उच्च जातियो वाले लोगो मे नीचापन और हल्कापन होगा तो उखरडे पर कमल उपजेगे। आज आप यह दृश्य देख रहे होगे कि जिन लोगो को महावीर के सिद्धान्त विरासत मे मिले है, वे तो नीद मे सो रहे है और दूसरे लोग जो नीची जाति के कहलाते है, इन सिद्धान्तो को पकड कर अपने जीवन को सुधार रहे है।

सातवे स्वप्न का अर्थ बताते हुए भगवान् ने कहा कि पचमकाल मे बडे-बडे सेठ अपने धन का अपव्यय करेंगे किन्तु उसका उपयोग सुकृत मे मुश्किल से होगा। आज विवाह शादियो और दूसरे आडम्बरो मे धन आदि शक्तियो की भयकर बरबादी ही तो की जा रही है। जन जीवन के कल्याण मे कितने लोग अपनी शक्ति लगा रहे है ?

आठवे स्वप्न मे कुभ कलश का रूपक बताया गया कि कुभ कलश के समान सत्यवादी, सद्‌गुणी एव साधु व्यक्ति उपेक्षित पडे रहेगे। लोग उनका मान सम्मान नही करेगे, लेकिन जो स्वच्छन्द वृत्ति वाले अनुशासनहीन होगे, वे अपने प्रपचो से अपना सत्कार, सम्मान करायेगे। आज के युग मे यह सारा अर्थ विन्यास सच साबित हो रहा है।

पंचम काल का रूपक भविष्यदृष्टा की दृष्टि में

ये स्वप्न हस्तिपाल महाराज ने देखे थे, जो अपूर्ण व्यक्ति थे। अपूर्ण व्यक्तियो को स्वप्न से आभास होता है। पूर्ण व्यक्ति अपने ज्ञान से सारी बातो को जान लेते है। भगवान् महावीर ने एक भविष्यदृष्टा की दृष्टि से उन स्वप्नो का अर्थ हस्तिपाल को समझाया। आने वाले पचमकाल की स्थिति का रूपक अपने ज्ञान से देखते हुए प्रभु ने कहा–

एक भविष्य वेत्ता ज्योतिषी या निमित्तिया नगर के राज दरबार मे पहुँचा। उसने राजा को भविष्य बताते हुए कहा कि आज से छ माह बाद बरसात से जो पानी बरसेगा और उस पानी को जो भी पीएगा, वह पागल हो जायगा। इसके बाद जब तक नया पानी नही बरसेगा और उसको वे पागल बने व्यक्ति नही पियेगे तब तक वे पागल बने रहेगे । इस भविष्यवाणी को सुनकर राजा और

प्रधान ने निश्चित किया कि वर्ष भर पीने के लिये पानी अभी ही एकत्रित कर लिया जाना चाहिये ताकि होने वाली बरसात का पानी नही पीना पडे। राजा ने नागरिको से भी ऐसा ही करने की अपील की। राजा ने टकियो वगैरा मे पानी सचित करा लिया। नागरिको मे से कईयो ने भविष्यवाणी पर विश्वास नही किया। छः माह बाद वर्षा हुई और जिसने भी उसका पानी पिया, हकीकत मे सभी पागल हो गये। राजा और दीवान पर असर नही हुआ, लेकिन उनकी स्वस्थ स्थिति देखकर पागलो ने उनको पद से उतार देने की सोची तब राजा और दीवान ने भी पागलो के समान हरकते करने मे ही अपनी खैर समझी। उसके बाद नई बरसात का नया पानी लोगो ने पिया तब उनका पागलपन दूर हुआ।

पचमकाल भी अभी एक प्रकार के पागलपन का चल रहा है। ससार के विषयो मे अधिकाश लोग पागल बने हुए है और जो हकीकत मे पागल नही है, वे भी पागलो के साथ पागलपन का ढोग नही करे तो उनके साथ उपेक्षा का व्यवहार किया जाता है। इस पचम काल के रूपक का जितना वर्णन किया जाय, कम है। यह काल विचित्रताओ से ही नही, विसगतियो से भी भरा पडा है।

सत्सगति का विशिष्ट महत्त्व
वृत्ति एव दृष्टि की शुद्धता

पचमकाल के इस अन्धकार पूर्ण युग मे सत्सगति का विशिष्ट महत्त्व माना जाना चाहिये, क्योकि सत्सगति का प्रभाव एक प्रकाश किरण के समान होता है। इस काल मे सब कुछ छोडकर अगर केवल एक सत्सगति का ही ख्याल कर लिया तो समझिये कि सब कुछ अपने आप सुधर जायगा। प्रभु सुमतिनाथ की सत्सगति मे जाने के लिये सत्गुरुओ की सत्सगति मे जाइये क्योकि गुरु ही गोविन्द को पाने का मार्ग बतावेगे।

सुधर्म, सुदेव एव सुगुरु की सगति आप को मिल गई तो सुगति भी आपको मिल गई क्योकि सत्सगति से वृत्ति और दृष्टि की शुद्धता प्राप्त हो जाती है। यही शुद्धता परम शुद्धता तक विकसित होती है।

नोखा
२१ १० ७६



14

आत्म लक्ष्मी की ऋद्धि : आत्म दीप की दीप्ति

सुमति चरण रज आतम अर्पणा
दर्पण जेम अविकार–सुज्ञानी.

सुमतिनाथ परमात्मा को स्मृति पटल पर लाकर भव्य प्राणी को भी सुमतिनाथ बनने का संकल्प लेना चाहिये। इसी उद्देश्य से परमात्मा की प्रार्थना प्रतिदिन किसी न किसी रूप मे आपके समक्ष आ ही जाया करती है।

परमात्मा पद सर्वोच्च्व पद माना गया है। इस पद को प्राप्त किये बिना परम शान्ति की उपलब्धि नही होती है। परमात्म पद की जो साधना है, वह परम सुख की साधना है। बाधाओ और आपत्तियो से रहित परमानन्द की अनुभूति इसी साधना मे होती है। इसी साधना के फलस्वरूप आत्म लक्ष्मी की ऋद्धि अपार रूप मे प्राप्त होती है तो आत्म-दीप की दीप्ति अविचल रूप से अनन्त काल प्रकाशित होती रहती है।

आज दीपावली का त्यौहार है तो क्या आप भी लक्ष्मी की ऋद्धि की कामना नही करते है ? क्या आप भी दीप की दीप्ति से समग्र वातावरण को आलोकित कर देना नही चाहते है ? लेकिन यह लक्ष्मी कौनसी हो और यह दीप कैसा हो ? क्या आप की मनोदशा भौतिक लक्ष्मी के पीछे ही है या कि उससे आगे सोचना चाहते है ? मिट्टी के दीप को ही समझते हैं या कि चैतन्य दीप का भी ख्याल है ? इसका निर्णय अन्तर्भावो की समीक्षा पर निर्भर करेगा।

अन्तरात्मा की दीपावली . उसकी लक्ष्मी : उसका दीप

जब तक मनुष्य की बुद्धि बाहरी पदार्थो मे सुख ढूढती रहती है– उन्ही

पदार्थो मे शान्ति का आस्वादन लेने की चेष्टा करती है, तब तक उसे अन्दर की शान्ति प्राप्त नही हो सकती है। अन्तरात्मा की दीपावली कुछ और ही प्रकार की होती है। उसकी लक्ष्मी वही होती है जिसके गुण होते है परम सुख और परम शान्ति। आत्म लक्ष्मी का मुकुट ज्ञान का होता है, हृदय दर्शन का तो हाथ और पैर चारित्र्य के । ऐसे आत्म लक्ष्मी का दीप अन्तर्ज्ञान के आलोक से जगमगाता है।

जब मनुष्य को अन्दर की शान्ति का अनुभव होने लगता है तो फिर उसका बाहरी पदार्थो से लगाव हटता है। तब वह अधिक से अधिक आन्तरिक आनन्द मे रमण करना आरम्भ कर देता है। उसका दृष्टिकोण जितना जितना आन्तरिकता से सम्बद्ध होता है, उतना-उतना उसका दृष्टिकोण बाहर से विलग होता जाता है। वह अन्दर की अनुभूति का रसास्वादन करता है, वही उसका अन्दर को जानना है तथा वही अन्तरात्मा का स्वरूप है।

अन्तरात्मा के इसी स्वरूप मे जब अवगहन होने लगता है तो इस जीवन की उपाधिया हट जाती है। इन उपाधियो का तात्पर्य है कि वे विशेषण जो बाह्य पदार्थो के सम्बन्धो की वजह से लगते है। जैसे मकान मालिक की उपाधि, अमुक सस्था के अध्यक्ष, पदाधिकारी आदि। वस्तुत बाह्य सम्पत्ति का स्वामित्त्व भी एक उपाधि ही है। जिसके पीछे चिन्ता का ऐसा क्रम लगता है कि मनुष्य अपनी आन्तरिकता से सम्बन्ध ही नही जोड पाता है।

बाहर की सारी उपाधियो को छोडते हुए जब अन्दर मे प्रवेश किया जाता है तो उससे पहले पाचो इन्द्रियो तथा शरीर की उपाधि का भी परित्याग करना होता है क्योकि मूल मे ये उपाधियॉ ही सबसे बडी है, जिन मे आत्मा उलझी रहती है। यदि आन्तरिक जीवन को सर्वथा उपाधि रहित बना लेते है तो तब परमानन्द की अनुभूति होने लगती है। वह आनन्दानुभूति तब जीवन मे समग्र रूप से व्याप्त हो जाती है। अतीन्द्रिय गुण भी अखूट होता है। कहते है कुबेर का खजाना अखूट होता है लेकिन कदाचित् वह भी खूट जाय पर अतीन्द्रिय गुणो का खजाना कभी कभी नही खूट सकता है। आत्मा की यह उपलब्धि महान् होती है। यह खजाना तभी मिलता है जब आत्मा का स्वरूप अन्तर्मुखी बन जाता है। अन्तर्मुखी वृत्ति से ही आत्मलक्ष्मी की प्राप्ति होती है तो आत्म दीप का आलोक बिखरता है।

आत्मा की दीपावली एक वर्ग की नही, समग्र आत्माओ की

ऐसी आत्मा की दीपावली किसी वर्ग विशेष या व्यक्ति विशेष की नही

मानी गई है। वह समग्र आत्माओ की दीपावली होती है उन आत्माओ की जो लक्ष्मी का स्वरूप ग्रहण करती है, जो ज्ञानालोक से आलोकित हो उठती है। मानवीय शरीर के साथ मानवीय चेतना है तथा उस चेतना के विकास द्वारा सबको अपनी आन्तरिक निधि के उद्घाटन का अधिकार है और जब मनुष्य इस आन्तरिक निधि को आत्म लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है तो समझना चाहिये कि उसने सब कुछ प्राप्य को प्राप्त कर लिया है। यह तथ्य किसी सामान्य व्यक्ति ने प्रकट नही किया है, बल्कि उन महान् आत्माओ ने जगत् के कल्याण के लिये प्रकट किया है जिसका अनुभव स्वय उन्होने लिया तथा मनुष्य की तरह ही मानव-देह मे रहकर बाह्य उपाधियो का त्याग किया व साधना द्वारा अपनी आन्तरिकता का सर्वोच्च विकास साधा।

आज की वर्ण व्यवस्था की स्थिति तो बिगड गई है। फिर भी वर्ण व्यवस्था की दृष्टि से क्षत्रिय कुल मे उत्पन्न होने वाले महावीर प्रभु त्रिशला नन्दन कहलाये। राजकीय वैभव मे जिन्होने जन्म लिया और जिनका जीवन बाहरी उपाधियो से घिरा हुआ था, उन्ही महावीर ने उस सब बाह्य सम्पत्ति का परित्याग किया एव आन्तरिक सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिये सचेष्ट बन गये। अन्तरात्मा के स्वरूप को उपलब्ध करने की दृष्टि से वे अनेक स्थानो पर पहुँचे, जहाँ अज्ञानी व्यक्तियो ने उन्हे कष्ट दिये। वे उन्हे तटस्थ भाव से सहते हुए अविचलित बने रहे। वे बाहरी कष्टो को अन्तर्ज्योति को प्रज्ज्वलित करने मे सहायक मानते थे। बाह्य आधि, व्याधि एव उपाधि की उलझनो से बाहर निकल कर उन्होने अन्तरात्मा मे प्रवेश कर लिया एव गहनतम साधना करके ज्ञान निधि की सम्पूर्ण उपलब्धि कर ली। उनकी अन्तरात्मा तब परमात्मा के रूप मे परिवर्तित हो गई। वह उनकी आत्म लक्ष्मी की सच्ची दीपावली थी।

परमात्मा रूप बनकर महावीर प्रभु ने उस दीपावली को अपने मे ही समेट कर नही रखी, बल्कि उस ज्ञान के प्रकाश को चारो ओर फैलाना प्रारभ कर दिया। जन जीवन को वे बोध देने लगे तथा आत्मदीप जलाने लगे। चरितार्थो की भी उन्होने स्थापना की। उन्हे ढाई हजार वर्ष से कुछ अधिक समय व्यतीत हुआ है। इस आत्म शौर्य्य के कारण ही उन्हे महावीर कहा गया।

भगवान् महावीर क्षत्रिय कुल के होते हुए भी अपने आत्म-विकास के साथ समग्र विश्व के हो गये। क्योकि वे अन्तर्दृष्टि के स्वामी हो गये थे। अन्तर्दृष्टि का स्वामी ससार के सम्पूर्ण प्राणियो का हितैषी बन जाता है। अन्तरात्मा के साथ जो पूर्णतया सम्बन्धित बन जाता है, उसके लिये फिर बाहरी रूपक वाधक नही रहता है। यह ब्राह्मण है, वह वैश्य है, क्षत्रिय है या शूद्र है– उससे दूर रहना

चाहिये, इसके पास जाना चाहिये– ऐसी भावना बहिरात्मा की होती है। यह सब बाहरी ससार का रूपक है जिसको अन्तरात्मा रूला देती है। अन्तरात्मा के स्वरूप की स्थिति से चलने वाले वीर पुरुष आन्तरिकता के विधि-विधान लेकर चलते है और वैसे विधिविधान वालो के बीच एकात्मीयता का अनुभव आ जाता है। उनकी एकात्मीयता गुणशीलता पर आधारित होती है। और वास्तव मे आत्मा की सच्ची दीपावली गुणशील आत्माओ की दीपावली होती है।

आत्म लक्ष्मी की सम्प्राप्ति : भगवान् महावीर का दिशा निर्देश

गुण और कर्म के आधार पर नई व्यवस्था का दिशा निर्देश देकर भगवान् महावीर ने इस भूमडल पर अनेक प्राणियो को प्रबोध दिया। और तो दूर रहा– स्वय को डसने वाले विषधर चडकोशिक को भी उन्होने शान्ति धारण करने का उपदेश दिया तथा उसने भी शान्ति धारण करके अमर शान्ति प्राप्त की। महावीर चारो गतियो के प्राणियो को शान्ति पहुँचाने के निमित्त बने तथा उन्होने आत्म लक्ष्मी की सम्प्राप्ति का जो दिशा निर्देश दिया, आत्म विकास की वही शाश्वत दिशा है।

महावीर ने आत्म विकास का जो महामत्र दिया है, वह णवकार मत्र है और यह मत्र उनकी विशुद्ध निर्लिप्तता का प्रतीक भी है कि उसमे अथवा अन्यत्र कही भी उन्होने अपने नाम को भी कही कोई महत्त्व नही दिया। उनकी अन्तर्दृष्टि सदा गुणो के प्रति ही केन्द्रित थी तथा गुणशीलता को ही उन्होने सम्पूर्ण महत्त्व दिया। उन्होने 'णमो महावीराण' नही कहलाकर 'णमो अरिहताण' बताया अर्थात्– किसी व्यक्ति विशेष को– चाहे वह कितना ही महान् हो– नमस्कार करना नही सिखाया बल्कि बताया कि उनको नमस्कार है और उन सबको नमस्कार है जिन्होने राग द्वेष, काम, क्रोध मद, मत्सर, तृष्णा आदि सभी आत्म शत्रुओ को पराजित कर समूल नष्ट कर दिया है। यह ज्ञात-अज्ञात सभी अरिहतो को नमस्कार है। इस प्रकार भगवान् महावीर ने जो कुछ दिशा निर्देश दिया था, वह 'सर्व प्राणीना हिताय, सर्व प्राणीना सुखाय' था। उन्होने वर्ण व्यवस्था को गुण-व्यवस्था मे परिवर्तित करने की प्रबल प्रेरणा दी।

दीपावली उन्ही महावीर स्वामी का निर्वाण दिवस है। उन्होने अपनी परम आत्मा को प्रखर सूर्य से भी अधिक तेजस्वी बना ली तो इस दिन को लोग प्रकाश–पर्व के रूप मे मनाने लगे। वस्तुत आत्म लक्ष्मी की सम्प्राप्ति करने की प्रेरणा देने वाला यह महान् त्यौहार है। यह किसी एक जाति का त्यौहार नही,

सम्पूर्ण ससार का प्रेरणास्पद त्यौहार है। चारो वर्ण गुण के आधार पर महावीर के भक्त बने। वेदो के प्रकांड पडित तथा महान् ब्राह्मण गौतम स्वामी इनके पट्टधर शिष्य हुए। सुदर्शन सेठ जैसे महान् वैश्य उनके श्रावक थे तो हरिकेशी जैसे महान् शूद्र भी उनके भक्त सन्त बने। जातिवादी भावना को समाप्त करके उन्होने मनुष्य का मूल्याकन उसके कर्म के आधार पर करने का निर्देश दिया। आत्मा सबमे समान है और जो ऊँच नीचता देखनी है, है आत्म स्वरूप के सदर्भ मे ही देखनी है तथा उसे भी देखकर घृणा नही करनी है बल्कि आत्मा की नीचता को उच्चता मे बदलने का सहृदय प्रयास करना है। आत्म लक्ष्मी को प्राप्त करने तथा दूसरो को प्राप्त कराने का यही श्रेयकारी मार्ग उन्होने बताया।

महावीर का निर्वाण पावापुरी मे हुआ, जहॉ उनका अन्तिम चातुर्मास था। हस्तिपाल महाराज के स्वप्नो का अर्थ विन्यास भी उन्होने इसी चातुर्मास मे किया।

महावीर की अन्तिम देशना . प्रकाश किरणों से प्रकाश पर्व

महावीर प्रभु चातुर्मास हेतु जब पावापुरी मे पधारे, तब सबको ज्ञात हो गया था कि यह प्रभु का अन्तिम चातुर्मास है। इसी विचार से गणतत्र के बडे-बडे नेता और गणपति भी पावापुरी मे एकत्रित होने लगे। उस समय नौ मल्ल तथा नौ लिच्छवियो ने मिलकर गणराज्य की स्थापना की थी जिसके गणपति चेला अथवा चेटक महाराज थे। महावीर की अन्तिम धर्म देशना श्रवण करने की महान् उत्सुकता सबको लगी हुई थी। आज के ही दिन भगवान् महावीर ने उत्तराध्ययन के रूप मे अपनी अन्तिम देशना प्रदान की तथा ससार के समस्त प्राणियो के लिये सार भूत तत्त्व उपलब्ध कराया। उन्होने इस दिन जो प्रकाश किरणे प्रसारित की, उन्ही प्रकाश किरणो से दीपावली के प्रकाश पर्व का आयोजन आरभ हुआ।

आज वही दीपावली का दिन है। आप मे से कई लोग चाहते होगे कि आज माल मिठाइयॉ खाने को मिले, बढिया-बढिया वस्त्र पहिने तथा घूमे फिरे। यह भी सोचते होगे कि आज लक्ष्मी का पूजन करना है तथा दीपक जलाने है। इस प्रकार सोचने वालो ने अभी तक दीपावली का वास्तविक प्रयोजन नही समझा है। वे लकीर के फकीर की तरह चल रहे है, लेकिन दीपावली के यथार्थ अर्थ से बहुत दूर है। यह बहिरात्मा का लक्षण है जो जड लक्ष्मी के पूजन तथा मिट्टी के दीपक जलाने की उत्सुकता रखती है। इस दिन तो महावीर ने अपनी

अन्तिम देशना देकर अन्तरात्मा का आह्वान किया था जिसका अभिप्राय था कि आत्म-लक्ष्मी का पूजन करो।

आत्म लक्ष्मी का पूजन कैसे होगा ? क्या शरीर के सुखो मे लिप्त होने और रगरेलियॉ मनाने से ? वह पूजन शरीर सुखो से दूर होने पर हो सकेगा। यह दिन शरीर की वृत्तियो को सुखाने का है-- उपवास और पौषध व्रत रखने का है ताकि जीवन का लक्ष्य इस शरीर सुख से दूर हट कर आत्म विकास की ओर मुडे। आत्म विकास तभी होगा जब आत्मा को समझेगे और आत्मा को समझकर उसका अनुशासन सारे जीवन पर लागू करेगे-- यही आत्म लक्ष्मी का पूजन है। आज के दिन मिट्टी के दीपक जला कर क्या सन्तोष करते है ? वीर निर्वाण का यह दिन ज्ञान के दीपक जलाने का है। ज्ञान के प्रकाश से ही आत्म स्वरूप प्रकाशमान बनता है। आन्तरिक प्रकाश की किरणो के साथ ही इस प्रकाश पर्व को मनाना चाहिये।

आत्मा की दीपावली तभी मन सकती है जब जीवन की वृत्तियो और प्रवृत्तियो मे प्रकाश का समावेश होने लगे। यह प्रकाश जब अन्त करण मे समाविष्ट हो जाता है उसका प्रभाव बाहर के व्यवहार मे भी स्पष्ट परिलक्षित होने लगता है। ब्यावर का खमेसरा परिवार व्यापार कार्य के निमित्त देश के विभिन्न भागो मे कार्यरत है लेकिन दीपावली के अवसर पर अपने सारे परिवार के सदस्यो के साथ वे मेरे सान्निध्य मे आ जाते है और धर्म साधना करते है । ऐसा आदर्श सभी को निभाना चाहिये, क्योकि यह प्रकाश पर्व भगवान् की अन्तिम देशना को सुनकर उसको हृदयगम करने का तथा अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाने का है।

अन्तरात्मा की साधना . परमात्म पद की सिद्धि

भगवान् महावीर जिस समय पावापुरी मे विराज रहे थे तथा उनकी अन्तिम देशना चल रही थी, उस समय स्वाभाविक तौर से दो रोज का तप हो गया था। उनकी अन्तरात्मा की साधना सम्पूर्ण हुई तथा परमात्म पद की सिद्धि उन्हे मिली तो उनके साधक अनुयायी भी अन्तरात्मा की साधना मे निमग्न हो गये।

अपने साधक जीवन मे महावीर ने विभिन्न क्षेत्रो मे विचरण करके चतुर्विध सघ की स्थापना की थी जो आध्यात्मिक साधना का एक अनुशासनबद्ध सघ बन चुका था। भगवान् ने सोचा कि जो उपदेश मैने दिये है, उनके अनुरूप

चलने वाले साधक कैसे होते है– उसका एक व्यवहारिक प्रयोग भी दुनिया को बतला दिया जाय। न मालूम उनके अनन्त ज्ञान मे कौन कौनसे आशय छिपे हुए थे ? उन सभी आशयो का विवेचन छद्मस्थ नही कर सकते हैं, फिर भी यथा शक्ति उनका विवेचन किया जा रहा है।

गगा का प्रवाह बहुत वेग से बह रहा है। उसकी सम्पूर्ण प्रवाह धारा को एक साथ मुह मे नही डाल सकते है लेकिन जितना जल हाथ मे समा सकता है, उतना जल तो मुह मे डाला जा सकता है। गगा की प्रवाह धारा के समान ही महावीर की उपदेश धारा है, उसमे से जितना अधिकतम धारण किया जा सकता है, उसको धारण करके जीवन मे उतारना चाहिये । तभी अन्तरात्मा की साधना आरभ की जा सकती है।

अन्तरात्मा की साधना ही महावीर का प्रधान लक्ष्य था। उनकी अन्तिम देशना इसी प्रयोजन से हुई थी कि एकत्रित जनसमूह आत्म साधना की तरफ प्रवृत्ति कर सके। उस समय उन्हे यह प्रतीत हुआ कि सभी तरह से महान् आत्मा गौतम गणधर के मन मे किचित् मोह उनके प्रति बना हुआ है और वह परमात्म पद की सिद्धि मे बाधक है तो उन्होंने तुरन्त गौतम स्वामी को आज्ञा दी कि वे जाकर विप्र देवशर्मा को प्रतिबोध दें। गौतम स्वामी भगवान् से दूर नही जाना चाहते थे, किन्तु वे आज्ञा को ही धर्म मानते थे। वे तत्काल चले गये और वापिस लौटै तब तक भगवान् निर्वाण पधार चुके थे। वे ज्ञानी थे और तब मोह की अन्तिम कडी को तोड कर वे भी केवलज्ञानी हो गये। उनकी अन्तरात्मा की साधना भगवान् की आज्ञा मानने से ही सम्पूर्ण बनी। उन्हे भी परम पद की सिद्धि मिल गई।

कई व्यक्ति क्षुद्र भावो से यह कल्पना करते है कि गौतम स्वामी पर महावीर का मोह था और उनको अन्तिम समय में इसी कारण दूर भेजा गया कि वे परमात्म पद की सिद्धि प्राप्त कर सके। भगवान् मोह नही हटा पाये– यह मलिन मस्तिष्क की बात है। उन्होने तो एक व्यवहारिक प्रयोग करके दुनिया को बताया कि आध्यात्मिक अनुशासन का प्रयोग किस रूप मे किया जा सकता है। आध्यात्मिक प्रयोग ऐसे होने चाहिये कि अन्तरात्मा की साधना का लक्ष्य केन्द्रित बना रहे और वह लक्ष्य परमात्म पद की सिद्धि तक पहुँच कर सफल बने।

आध्यात्मिक प्रयोग का विषय
आत्म ज्योति की जागृति

जिस प्रकार आज के वैज्ञानिक प्रयोगशाला मे व्यवहारिक प्रयोग करते है

तथा उसके खरा उतरने पर दुनिया को बताते है, उसी प्रकार आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र मे भी विविध व्यवहारिक प्रयोग किये जाते है तथा उनकी सफलता पर अनुभूत सिद्धान्तो का निर्माण किया जाता है। उत्तराध्ययन सूत्र के 36वे अध्याय मे सुख विपाक का विवेचन आया है तो उसका पहला अध्ययन विनय वृत्ति पर कहा गया है। महावीर द्वारा न चाहने पर भी गौतम को प्रतिबोध के लिये अपने से दूर भेजना– यह एक प्रकार से आध्यात्मिक प्रयोग का विषय था। विनय वृत्ति कैसी होती है तथा अनुशासन का पालन किस रूप मे किया जाना चाहिये– इसका सकेत संसार को इस सफल प्रयोग से मिलता है। आध्यात्मिक प्रयोग के विषय इसी लक्ष्य से सम्बन्धित रहते है कि आत्म ज्योति की जागृति हो और वह निरन्तर देदीप्यमान बनती रहे।

उधर गौतम स्वामी देव शर्मा को प्रतिबोध देने गये और इधर भगवान् महावीर 36वॉ अध्ययन फरमाते-फरमाते शुक्ल ध्यान मे आरूढ हुए। यह कैसे हुआ इसकी प्रक्रिया अति सूक्ष्म होती है। स्थिर मन, वचन, काया को एकाकार बनाकर उन्होने सब कुछ परित्याग कर दिया तथा अचल स्थिति की प्राप्ति के बाद आज की रात्रि मे उनका मोक्षगमन हो गया। वे निर्वाण को प्राप्त हुए। निर्वाण का तात्पर्य है कि वे शुद्ध आत्म ज्योति मे रमण कर गये। प्रभु के इस प्रसग का देवो को विज्ञान हुआ और सभी वहॉ पहुँचने लगे तो रात्रि काल मे देव विमानो का जगमग प्रकाश चारो और फैल गया। देवो ने तब विधिपूर्वक प्रभु महावीर के शरीर की अन्तिम क्रिया की। उस प्रकाशमय रात्रि को ही दीपावली के त्यौहार के रूप मे मनाना आरभ किया गया। मूल मे प्रेरणा आध्यात्मिक प्रकाश की थी लेकिन उसकी रूढ परम्परा पकड ली गई और आज जिस रूप मे यह त्यौहार मनाया जाता है, उसमे कई प्रकार से आध्यात्मिक परिवर्तन की आवश्यकता है ताकि आत्म ज्योति को जागृत बनाने का लक्ष्य सामने रह सके।

आज कौनसे प्रकाश की आवश्यकता है ? आत्म ज्योति की जागृति किस तरह के प्रकाश से हो सकेगी ? आवश्यकता है आध्यात्मिक प्रकाश की– सम्यक् ज्ञान के आलोक की। अगली रात्रि तक भगवान् केवलज्ञानी थे अत उनके केवलज्ञान का प्रकाश फैल रहा था। तब जनमानस मे भी ज्ञान का प्रकाश व्याप्त हो रहा था। पिछली रात्रि मे गौतम स्वामी को केवल ज्ञान की प्राप्ति के रूप मे प्रकाश फैला हुआ रहा। भगवान् का जो अन्तिम वर्णन शास्त्रो मे है, उसके अनुसार वह सारी रात्रि प्रकाशमयी बनी रही। उस प्रकाश से आत्मिक उपलब्धि हुई तथा जीवनी शक्ति का सृजन हुआ।

आत्म शक्तियो की ऋद्धि आत्म लक्ष्मी के पूजन से

दीपावली के प्रति मानव का मुख्य उद्देश्य आत्म लक्ष्मी को वरण करना होना चाहिये। वह कब आ सकती है ? वह तभी आ सकती है, जब व्यक्ति अन्तर्मुखी बनकर आत्म शक्तियों को जागृत बनावे ताकि एक दिन उन्हे प्राप्त करके आत्म-ऋद्धि से सम्पन्न बन सके। अगली रात्रि को यदि आपने आत्म-लक्ष्मी का पूजन नही किया हो तो इस रात्रि मे भी कर सकते है। अब आप जाप कैसे करेगे ? पहले तो कहा था– महावीर स्वामी केवलज्ञानी, गौतम स्वामी चौज्ञानी और अब यह कहना होगा– महावीर स्वामी पहुँचे निर्वाण, गौतम स्वामी को हुआ केवलज्ञान। इस जाप के साथ परमात्म-स्वरूप मानस पर अकित होना चाहिये क्योकि उस स्वरूप दर्शन से ही बहिरात्मा को अन्तरात्मा बनने की प्रेरणा मिलती है। अन्तरात्मा की स्थिति मे पहुँचने के बाद ही आत्म लक्ष्मी का पूजन सभव बनता है।

आत्म लक्ष्मी का पूजन सामान्य नही होता है। जड लक्ष्मी को आप पूजते है तो क्या करते है ? लक्ष्मी का चित्र ले आते होगे और कुछ मिठाई फल रखकर परम्परा के अनुसार पूजन कर लेते होगे। उसका कोई महत्त्व नही है। आप जड लक्ष्मी से मांगनी करते है कि आपको धन सम्पत्ति मिले। मागनी करने वाली आत्मा ऊँची नही कहलाती है क्योकि यह आत्मा स्वय अपनी शक्तियो से ऋद्धिशाली है और वह मांगनी करती फिरे– यह क्या शोभाजनक है ? आत्म लक्ष्मी कही बाहर नही है, भीतर है– उसी को जगाना है, उसी को पूजना है, उसी को निर्मल बनाना है ताकि उस साधना से जो सिद्धि मिलेगी वह अमूल्य होगी।

यह त्यौहार आध्यात्मिक लक्ष्मी के आह्वान का त्यौहार है। बाहर के आडम्बर का त्यौहार इसे नही बनावे। आत्म लक्ष्मी का ध्यान धरिये तथा आन्तरिक शुद्धि की ओर आगे बढिये ताकि आत्मिक शक्तियो के रूप मे अमूल्य ऋद्धि प्राप्त हो सके। परमात्म स्वरूप का जब यह आत्मा वरण करेगी तो आत्म दीप दीप्तिमान हो उठेगा। तब आत्मा ज्योति मे ज्योति के समान स्थित हो जायगी।

नोखा
२२.१०.७६

□□□

15

विविध रूपिणी बुद्धि की एकरूपता

श्री सुपार्श्व जिन वदिए,
सुख सम्पत्ति नो हेत--ललना

श्री सुपार्श्व जिनेश्वर को कवि ने अपनी प्रार्थना मे वन्दन करने का सम्बोधन दिया है, लेकिन सम्बोधन किस को दिया है ? ललना को। तो क्या उनका सम्बोधन स्त्री समाज को ही है और पुरुष समाज को नही ? ज्ञानीजन तो सबको समभावना से ही उपदेश देते है तो कवि ने सन्त परम्परा को छोडकर केवल स्त्री समाज को ही सम्बोधित क्यो किया है ? कवि ने वस्तुत परम्परा छोडी नही है। ललना प्रतीकात्मक रूप से बुद्धि को कहा गया है और बुद्धि प्रत्येक आत्मा के गुण-रूप मे सबके पास विद्यमान रहती है। बुद्धि को ही इस प्रार्थना मे ललना कहा गया है।

यह बुद्धि ही है जो विविध प्रकार के विचारो को ही पैदा नही करती, लेकिन उन विचारो के माध्यम से विविध प्रकार के कार्यो की भी कारणभूत होती है। सासारिकता मे जब डूबी रहती है तो यह बुद्धि विविधरूपिणी होती है– कब किस रूप मे चल रही है तो कब उस रूप को बदल कर दूसरे रूप मे चली जाती है– इसका कुछ पता ही नही लगता है।

इस विविधरूपिणी बुद्धि मे ही एकरूपता लाने का प्रश्न है। वह विपरीत दिशाओ मे नही भटके बल्कि एक दिशा मे प्रगति करे– यह वाछनीय है। इसके लिये कवि की इस बुद्धि को चेतावनी है कि वह सच्ची सुख सम्पत्ति के कारण की तरफ मुडे और उसके कारणभूत है श्री सुपार्श्व जिनेश्वर– अत उन्हे वन्दन करने का सम्बोधन दिया गया है। श्री सुपार्श्व भगवान् को नमस्कार यदि यह बुद्धि आन्तरिकता के साथ कर लेती है तो वह सच्ची आत्मिक सम्पत्ति की उपलब्धि भी कर सकती है।

बुद्धि · चेतन का गुण उसकी सार्वभौम शक्ति

किसी भी आत्मा का शरीर किसी भी रूप मे रहे, लेकिन शरीर के भीतर रहने वाली प्रत्येक आत्मा का जो कुछ भी व्यवहार है, वह इस बुद्धि की शक्ति के माध्यम से ही होता है। बुद्धि मूल मे चेतन का गुण है अत चेतन के साथ इसकी सम्बद्धता रहती है। चेतन के साथ सम्बन्धित होने के कारण बुद्धि की शक्ति सार्वभौम तथा सार्वजनीन होती है।

बुद्धि की यह शक्ति प्रत्येक प्राणधारी मे रहती है– चाहे वह प्राणी मनुष्य के रूप मे है, देव या नारकीय की स्थिति मे है अथवा पशुपक्षी की योनि मे है। एकेन्द्रिय प्राणी भी बुद्धि की शक्ति का चमत्कार अपनी दृष्टि से ले पाता है। वनस्पति के पौधे को देखकर सहसा कोई कल्पना नही कर सकता कि इसमे भी क्या आत्मा है ? वैज्ञानिको ने तो बहुत बाद मे सिद्ध किया कि वनस्पति मे भी प्राण होते है लेकिन तीर्थकर देवो ने बहुत पहले ही बता दिया था कि वनस्पति मे आत्मा है– एक नही, अनेक हैं। निगोद आत्मा का बारीकी से विश्लेषण करते हुए कहा गया है कि इस निगोद के एक शरीर मे अनन्त आत्माओ का निवास होता है। इसको समझाने के लिये शास्त्रकारो ने रूपक दिया है जिससे अनन्त आत्मा के स्वरूप का ध्यान बैठ सकता है। प्याज का एक छिलका लिया जाय वह भी सुई की नोक पर आवे उतना सा। उस छिलके की भी परते उतारी जायगी तो कई परते उतर जायगी। उन सब परतो को एक तरफ रखकर केवल एक परत ले ले तो उसमे असख्य श्रेणियॉ कही गई है। एक-एक श्रेणी मे अनन्त आत्माओ की स्थिति का उल्लेख है। इस तरह एक निगोद मे अनन्त जीव होते है। आत्माओ का अस्तित्त्व अलग-अलग होता है लेकिन शरीर सिर्फ एक ही होता है। इन जीवो मे भी बुद्धि का अस्तित्त्व बताया गया है। ये भी आहार आदि की दृष्टि से सज्ञावान होते है।

बुद्धि की शक्ति सब प्राणियो के साथ होती है लेकिन उसकी न्यूनाधिकता का बडा अन्तर रहता है। वे अपनी बुद्धि से कितना क्या करते है तथा अपनी बुद्धि से कितना क्या ग्रहण कर सकते हैं– इसमे भी भारी अन्तर होता है। छोटे प्राणियो मे ग्रहण शक्ति नही के बराबर होती है। फिर ज्यो-ज्यो प्राणी वर्ग मे इन्द्रियो की अधिकाधिक शक्तियॉ होती है, तदनुसार बुद्धि का क्षेत्र भी बढता जाता है। दो इन्द्रियो वाले जन्तु से पांच इन्द्रियो वाला पशु अधिक समझदार होगा ही। बुद्धि के द्वारा ग्रहण करना तथा अपने कार्य के लिये बुद्धि का प्रयोग

करना– यह क्षमता सर्वाधिक उन्नत प्राणी मनुष्य मे सर्वोच्च रूप से होती है। बुद्धि विकास जीव विकास के क्रम पर आधारित होता है।

मनुष्यो मे भी सभी मनुष्यो की बुद्धि-शक्ति समान नही होती है। सबकी बुद्धि मे न तो एक सी क्षमता होती है और न ही एक सी ग्रहण शक्ति अथवा प्रयोग शक्ति । प्रत्येक मनुष्य का अपनी बुद्धि-शक्ति का माप तौल भी भिन्न-भिन्न होता है। कई मनुष्यो के सामने एक बात कहे तो वे सभी व्यक्तिगत रूप से उस बात को अलग-अलग रूप मे पकडेगे ? बौद्धिक विकास की दृष्टि से जिसकी चेतना अधिक जागृत है अथवा विकसित है, वह मनुष्य किसी बात को जल्दी और स्पष्टता से ग्रहण कर लेता है। लेकिन यह विकास जितना अल्प होगा, ग्रहण शक्ति भी उसी रूप मे मन्द रहेगी। इसलिये कवि ने भी बुद्धि ही को सम्बोधित किया है कि वह परमात्मा को वन्दन करे क्योकि बुद्धि को इस हेतु सजग कर देगे तो कार्य भी अवश्य बन जायगा।

बुद्धि की बेलगाम सक्रियता और मनुष्य का भटकाव

इस सभा मे उपस्थित सभी भाई बहिनो मे भी बुद्धि है, इसी कारण 'ललना' को सम्बोधित किया गया है। आप सोचिये कि कवि की भावना के अनुसार आप भी अपनी 'ललना' को किस प्रकार सम्बोधित करेगे तथा उसे किस दिशा मे सक्रिय बनावेगे ?

मनुष्य जीवन की उच्चता का यह भी प्रधान कारण है कि वह बुद्धिशाली प्राणी है। बुद्धि ही के कारण उसकी वैचारिकता एव उसकी क्रियाशीलता है। बुद्धि के साथ ही उसकी दौड भाग है और उसका करना धरना है। बुद्धि की सक्रियता भी दो प्रकार की होती है– सोद्देश्य एव निरूद्देश्य। बिना किसी अभिप्राय के बुद्धि का चालन मूर्खता या असावधानी की परिभाषा मे ही आयगा । जो भी कार्य हो, उद्देश्य के लिये होना चाहिये तो बुद्धि का चालन भी सोद्देश्य ही होना चाहिये। अब उद्देश्य भी दो प्रकार के हो सकते है–एक तो बाह्य उद्देश्य तथा दूसरा आन्तरिक उद्देश्य। बाह्य उद्देश्य पौद्‌गालिक होता है– सासारिक सुखो के पीछे भगाने वाला होता है। दूसरा उद्देश्य आन्तरिक और आध्यात्मिक होता है जिसका अनुसरण करके आत्म विकास की ऊँचाइयॉ नापी जा सकती है।

बुद्धि का प्रयोग दोनो उद्देश्यो के लिये किया जा सकता है। जिस उद्देश्य

का बुद्धि अनुसरण करेगी उसकी उपलब्धि मे ही वह मनुष्य को सक्रिय बनायगी। बुद्धि की सक्रियता यदि ज्ञान युक्त होती है तो वह सोद्देश्य और आत्म नियत्रित दोनो होती है। लेकिन बुद्धि की सक्रियता बाह्य पदार्थो मे लगादी गई तो उसकी सक्रियता निरूद्देश्य भी हो सकती है और अनियत्रित भी । यह बुद्धि की बेलगाम सक्रियता मनुष्य को भटकाव के भवर मे फसा देती है।

सासारिकता मे लिप्त मनुष्य की बुद्धि मे यह भावना जागती है कि अपने शरीर को सुख देना है और अपने परिवार का पालन पोषण करना है सो धन की आवश्यकता है, तब वह अन्य सारे काम छोड कर पैसा कमाने के पीछे भागता है। पहले नीति से कमाना चाहता है– पूर्ति नही होती है तो अनीति को भी अपना लेता है। अपनी जन्मभूमि मे पैसा कमाता है, उससे पूरा नही पडता है तो परदेश मे भी कमाने के लिये जाता है। नोखामडी के सभी निवासी क्या यही पर व्यापार धधा करते है ? इनमे से कई परदेश जाते है। परदेश उनको कौन ले जाता है ? दीखता यही है कि उनका शरीर ले जाता है, लेकिन उस शरीर का संचालन भी किसके द्वारा होता है ? मूल मे यही बुद्धि है जो मनुष्य को किसी भी कार्य के लिये क्रियाशील बनाती है।

यही बुद्धि होती है जो मनुष्य को लोभ, तृष्णा और ममता मे इस तरह उलझा देती है कि उसे उस दलदल से बाहर निकलने का कोर किनारा तक नही दिखाई देता। कहते है कि तब बुद्धि भी काम नही देती। बुद्धि मे जब तृष्णा समा जाती है तो बुद्धि भी पागल हो जाती है ओर वह मनुष्य को पागल बना देती है। गहराई से इस बारे मे चिन्तन किया जाय तो नोखामडी का निवासी नोखामंडी में रह कर भी अपना पेट तो भर सकता है, लेकिन पेटी नही भर सकता है। पेट भरना सन्तोष का प्रतीक है तो पेटी भरना तृष्णा का प्रतीक है। तृष्णा की पूर्ति कभी नही होती। ऐसी तृष्णा के पीछे बुद्धि को लगा देते है तो उसमे मनुष्य को भटकाव के सिवाय क्या मिल सकता है ?

बहुरूपिणी बुद्धि को एकरूपता मे ढालिये !

ये नाना रूप धर कर बुद्धि जो ससार के मरूस्थल मे मृगतृष्णा की तरह दौडती है, उस के नाना रूपो को समेटिये क्योकि इस बहुरूपिणी बुद्धि ने मनुष्य को भटकाव के जगल मे डाल दिया है। वह पथभ्रष्ट है। उसको कही पहुँचना है तो उसका मार्ग पकडना जरूरी है। इधर-उधर दिशाहीन होकर भटकना छोड

कर वह लक्ष्य निर्धारित करके उस पर पहुँचने का मार्ग पकड ले तो उसकी बहुरूपिणी बुद्धि एकरूपता मे ढल जायगी, क्योकि तब एक लक्ष्य और एक मार्ग ही उसके सामने रहेगा।

धन कमाने की ही बात को लीजिये । बुद्धि इस काम के लिये भी अगर सही दिशा मे चलेगी तो धन कमाने मे भी नैतिकता का ध्यान रखा जायगा तथा उसका व्यय भी हार्दिकता के साथ शुभ कार्यो के लिये होगा। इसी काम मे बुद्धि ने अगर गलत दिशा पकडली तो वह भयकर अपराधो और घोर कुकर्मो मे भी फस सकती है। इसलिये बुद्धि को इस एकरूपता मे ढालिये कि सासारिकता भी धार्मिकता से जुडी हुई रहे। अर्थोपार्जन के समय भी यह सोचना चाहिये कि कमाई नीति के साथ हो रही है या अनीति के साथ ? क्या आप ऐसा सोचते है ? क्या सिर्फ धार्मिकता दिखाते ही है अथवा उसको बुद्धि के साथ भी जोड कर रखते है ? यदि नीति की बात नही सोचते हैं तो यह जीवन कितना अधिक पतित हो सकता है– इसकी कल्पना भी नही कर सकते है। क्या पैसा कमाना ही सिर्फ काम है ? यदि धर्म के साथ कमाई नही की तो जीवन शून्य रह जायगा।

बुद्धि की एकरूपता इस दृष्टि से अत्यावश्यक है कि जीवन एक दिशा मे चले। सद्बुद्धि ही दिशानिष्ठ होती है क्योकि वह स्थिर होती है। बुद्धि ही मूल कारण होती है मनुष्य की गतिशीलता की तो बुद्धि ही उसको दिशा निर्देश भी करती है। धर्म को समझने वाली भी बुद्धि ही होती है। सारी भौतिक परिस्थितियॉ भी बुद्धि के माध्यम से बनती है तो विज्ञान की उन्नति मे भी बुद्धि का ही योग होता है। बुद्धि का कार्य क्षेत्र विशाल और व्यापक है किन्तु उस विशालता मे उसको भटकने नही देना है– उसको दिशाहीन एव मार्गहीन नही बनने देना है और इसी कारण से उसको एकरूपता मे ढालना है। कवि ने इसी बुद्धि को ललना के नाम से सम्बोधन दिया है कि यदि तुझे अलौकिक सुख सम्पत्ति की चाह है तो सुपार्श्व जिनेश्वर को वन्दन कर। परमात्म स्वरूप की दिशा मे बुद्धि को लगा देगे तो इसकी बहुरूपिणी अवस्था समाप्त हो जायगी तथा यह एक लक्ष्य के प्रति एकरूप बन जायगी।

बुद्धि विकास का कार्य– हीरे की तरह उसको तरासना

एक चमकते पत्थर के टुकडे की तरह बुद्धि भी अनगढ होती है। जैसे

उस पत्थर को तरास कर उसको हीरे का सुन्दर और मनभावन रूप दे दिया जाता है, वैसे ही बुद्धि को गढना, तरासना और सद् रूप देना होता है। बुद्धि विकास का कार्य होता है कि वह श्रेष्ठ दिशा में गतिशील बने, एकरूप हो तथा अपनी सुदृढ ग्रहण एवं प्रयोग शक्ति के द्वारा लक्ष्य को प्राप्त करके ही विश्राम ले।

मै जब भी जरा सी तात्त्विक बात आपको समझाना चाहता हूँ और सरलता से समझाता हूँ, फिर भी ऐसा लगता है जैसे आपकी बुद्धि पर वजन गिर रहा हो। बुद्धि पर वजन मत गिरने दीजिये और उसकी ग्रहण शक्ति बढाकर उसका समुचित विकास कीजिये। इस बुद्धि का विकास करने के लिये ज्ञान पचमी की आराधना की जाती है। आज ज्ञान पचमी है और इस दृष्टि से कई भाई-बहिन उपवास रख कर धर्म साधना मे भी बैठे है। उनसे पूछू कि आज किस बात का उपवास है तो कहेगे कि ज्ञान पचमी का उपवास है। उपवास जरूर करे लेकिन ज्ञान पचमी के निमित्त से सर्वप्रथम ज्ञान की आराधना तो करे। ज्ञान की आराधना क्या होगी ? यही कि आप सबसे पहले ज्ञान का वहन करने वाली बुद्धि के स्वरूप को संशोधित, सुन्दर एव श्रेयकारी बनावे।

ज्ञान की आराधना अथवा बुद्धि की आराधना एक ही बात है। जितना बुद्धि का विकास होता है और वह स्वस्थ दिशा मे अग्रसर बनता है, उतना ही ज्ञान का स्वरूप आत्मोन्मुखी रहता है। ज्ञान की सही उपासना और बुद्धि का सही विकास होता है तो ज्ञानावरणीय कर्म का भी क्षयोपशम होता है। जितना यह कर्म बन्धन ढीला होता है, उतनी ही ज्ञान की साधना परिपक्व बनती जाती है। जो ज्ञान साधना के बाधक बनते है और फिर भी कहते है कि वे ज्ञान पचमी का उजमना कर रहे है तो वह उजमना तो होगा नही, लेकिन ज्ञानावरणीय कर्मो का अलग से बध हो जायगा। यह जानकारी करनी चाहिये कि ज्ञान की उपासना सार्थक क्यों नही होती है तथा बुद्धि का सम्यक् विकास असफल क्यो हो जाता है ?

बुद्धि विकास के कार्य और उसके अवरोधो की जानकारी कर्मवाद के सिद्धान्त से हो सकेगी। उस से यह ज्ञात हो जायगा कि ज्ञानावरणीय कर्म बधन के क्या–क्या कारण होते है और उनको तोडने के क्या-क्या उपाय है ? यदि उन कारणो को जान ले तो उन्हे अपने साथ घटित न होने दे तथा उपायो की जानकारी लेकर उन पर अमल करे तो अवरोधो की समाप्ति हो सकती है। जितनी अशो मे अवरोधो की समाप्ति होगी, उतने ही अशो मे बुद्धि का सम्यक् विकास सम्पादित हो जायगा तथा ज्ञान की साधना सफल बन जायगी। ज्ञानावरणीय कर्मो का उसी तरह क्षय करना होता है जिस तरह हीरे की गढाई

करते वक्त उसके ऊपर के भाग को इस तरह तराश दिया जाता है कि वह हीरे का सुन्दर आकार ग्रहण करले। कर्म क्षय से ज्ञान और बुद्धि का ऐसा ही श्रेष्ठ रूप निखर आता है।

बुद्धि की गतिशीलता अन्तरात्मा के अनुशासन में

कई भाई बहिन ज्ञान पचमी की आराधना करते है और उस आराधना मे केवल उपवास और पौषध करके ही रह जाते है– स्वाध्याय, शास्त्राध्ययन या चिन्तन मनन नही करते तो उन्हे सफलता नही मिलती है। ज्ञान पचमी का लक्ष्य होता है– ज्ञान मे अभिवृद्धि करना तथा बुद्धि को शुभ दिशा मे गतिशील बनाना। इस लक्ष्य की तरफ गति पहले होनी चाहिये। उसके साथ मे तपस्या करे तो वह सोने मे सुगध का काम करेगी। जो आत्माएँ साधना पक्ष को सम्यक् रीति से पकड लेती है, वे अन्तरात्मा का स्वरूप ग्रहण कर लेती है तथा अपना अनुशासन स्थापित कर लेती है। आत्मानुशासन मे चलने वाली बुद्धि की गतिशीलता तब आत्मविकास के पथ पर ही अग्रगामी बनती है।

बुद्धि की गतिशीलता पर नियत्रण या अनुशासन आवश्यक होता है, लेकिन कोई भी अविवेकपूर्ण नियत्रण या अनुशासन बुद्धि की गति को ज्यादा ही बिगाडेगा। केवल आत्मा का ही अनुशासन बुद्धि को शुभ मोड दे सकता है। क्योकि बुद्धि स्वय चैतन्य आत्मा का गुण होती है और गुणी ही अपने गुण का श्रेष्ठतम उपयोग ले सकता है। इस दृष्टि से विवेकशील आत्मा जब अपनी बुद्धि को अपने अनुशासन मे ले लेती है तो वह उस बुद्धि के माध्यम से आत्म विकास एव लोक कल्याण के कार्यो को ही सम्पादित करवाती है।

आत्मा के अनुशासन मे बुद्धि को जो मार्ग पकडना होता है वह होता है धर्म का मार्ग। इस ससार मे धर्म ही गुण रूप मे दृष्टिगत होता है। धर्म अपने गुणी रूप आत्मा की वृत्तियो एव प्रवृत्तियो के साथ ही रहता है। गुण और गुणी का तादात्म्य स्वरूप है– उनका सम्बन्ध अभिन्न होता है। फिर भी गुणी आत्मा को अपने गुण धर्म की ओर प्रवृत्त बनाने मे बुद्धि का विशिष्ट योगदान होता है, बल्कि बुद्धि की ही सम्यक् गतिशीलता से इन गुण-गुणी का सम्बन्ध अभिन्न के साथ-साथ घनिष्ठ भी बना रहता है। जैसे सूर्य और किरण का अभिन्न सम्बन्ध होता है, वैसे गुणी और गुण का परस्पर अभिन्न सम्बन्ध होता है क्योकि यदि सूर्य मे से किरणे हट जाय तो सूर्य-सूर्य रूप ही नही रहेगा। इसे तादात्मय

सम्बन्ध कहते है। धर्म के समान ही ज्ञान और बुद्धि भी आत्मा के गुण ही होते है, बल्कि धर्म जिसे कहते है, वह आत्मिक गुणो का पुज ही तो होता है।

इसलिये गुण जब गुणी के अनुशासन मे रहता है, तभी उसका सम्यक् विकास भी हो सकता है। अन्तरात्मा के अनुशासन मे ही इस दृष्टि से बुद्धि की सम्यक् गतिशीलता निर्मित होती है।

सुख सम्पत्ति की चाह सद्बुद्धि में उसकी राह

बुद्धि को सशोधित, सस्कारित एव विकसित करने का प्रमुख लक्ष्य ही यह होता है कि बुद्धिशाली आत्मा अपनी सुख सम्पत्ति की चाह पूरी कर सके। यह सुख सम्पत्ति पौद्गलिक नही होगी, बल्कि आत्मिक होगी। आत्मिक सुख सम्पत्ति आत्मिक गुणो से प्राप्त होती है तथा आत्मिक गुणो मे प्रधान गुण सद्बुद्धि का होता है। सद्बुद्धि की राह पर जो चलता है, वही आत्मिक सुख सम्पत्ति को प्राप्त करने की अपनी चाह को पूरी कर सकता है।

आत्मिक सुख सम्पत्ति क्या होती है ? सम्पत्ति कहते हैं मूल्यवान उपलब्धि को। आत्मा के लिये अमूल्य उपलब्धि होती है, उसके अपने गुणो का प्रतिष्ठित होना– उसकी अपनी शक्तियो का जागृत बनना। आत्मा को आत्मिक गुण तभी प्राप्त होते है जब मूल मे बुद्धि उस दिशा मे गतिशील बन जाती है। बुद्धि की ही सत्प्रेरणा से आत्मा पहले अपनी स्वरूप मलिनता को साफ करने की कोशिश करती है। जैसे लगे हुए गहरे मैल को धोने पर दर्पण की स्वच्छता उभर आती है– दर्पण का अपना स्वरूप प्रकट हो जाता है, उसी तरह आत्म स्वरूप पर छाई कर्मो की अपने कलुषित जीवन की मलिनता परिमार्जित होने पर आत्मा का मूल स्वरूप प्रकट होता है। मूल स्वरूप के प्रकट होने का ही अर्थ है आत्मिक गुणो एव शक्तियो का जागृत बन जाना। यही आत्मा की सम्पत्ति होती है और ऐसी सम्पत्तिशाली आत्मा ही सच्चे सुख का रसास्वादन करती है।

नोखा
२३.१०.७६

❑❑❑